

मूल में भूल

(भैया भगवतीदासजी और पण्डित बनारसीदासजीकृत उपादान-निमित्त संवाद के दोहों पर आध्यात्मिक संत पूज्य श्रीकानजी स्वामी के प्रवचन)

अनुवादक :
पण्डित परमेश्वरीदास न्यायतीर्थ

प्रकाशक :
पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट

ए-४, बापूनगर, जयपुर-३०२०१५
फोन : (०१४१) २७०७४५८, २७०५५८९
E-mail - ptstjaipur@yahoo.com

प्रथम संस्करण : ५ हजार
(१९४८)
द्वितीय संस्करण : २ हजार
(१ मार्च, २००३)
योग : ७ हजार

मूल्य : दस रुपए

कहाँ/क्या?

उपादान निमित्त सम्वाद

भैया भगवतीदास कृत १ से ८८

कविवर बनारसीदास कृत ८९ से १०२

मुद्रक :
प्रिन्ट 'ओ'६ लैण्ड
बाइस गोदाम, जयपुर

प्रकाशकीय

पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर जैन समाज की ख्याति प्राप्त संस्था है, जो जैन आगम के प्रकाशन में अग्रणी है। इस संस्था के माध्यम से प्रकाशित विपुल साहित्य ने बिक्री के सारे रिकार्ड तोड़ दिए हैं। लागत से भी कम कीमत में साहित्य उपलब्ध कराने में इस संस्था का कोई सानी नहीं है।

बीसवीं शताब्दी के चर्चित आध्यात्मिक संत पूज्य कानजी स्वामी के प्रवचनों का प्रकाशन भी इस संस्था का महत्वपूर्ण उद्देश्य रहा है। यही कारण है कि पूज्य स्वामीजी के प्रवचनों की अब तक पचास से अधिक पुस्तकें और उनके अनेक संस्करण इस संस्था के माध्यम से प्रकाशित होकर जन-जन तक पहुँच चुके हैं। आत्मार्थी बन्धुओं ने उक्त साहित्य के पठन-पाठन में गहरी रुचि दिखाई है।

उक्त श्रृंखला को आगे बढ़ाते हुए भैया भगवतीदासजी और कविवर बनारसीदासजी कृत उपादान-निमित्त संवाद विषयक दोहों पर पू. स्वामीजी के प्रवचन **मूल में भूल** पुस्तक के रूप में प्रस्तुत करते हुए हमें हार्दिक प्रसन्नता का अनुभव हो रहा है। वैसे तो इसका सर्वप्रथम प्रकाशन सं. २४७३ में सोनगढ़ से किया गया था, परन्तु अब अनुपलब्ध होने से इसे पुनः प्रकाशित किया जा रहा है। इस कृति का अनुवाद पं. परमेश्वरीदासजी न्यायतीर्थ द्वारा किया गया है, जिसके लिए हम उनका हृदय से आभार मानते हैं।

लम्बे अन्तराल के पश्चात् इस कृति का पुनः प्रकाशन किया जा रहा है, इसका भी एक हेतु है। जिनेन्द्रकथित तत्त्वज्ञान का अध्ययन करते समय सन् १९६० से ही मेरे मन में उपादान-निमित्त को लेकर खलबली मची हुई थी। अनेक ग्रंथों का अध्ययन करने तथा शताधिक विद्वानों के समागम से भी मैं तत्त्वसम्बन्धी निर्णय नहीं कर पा रहा था। स्वामीजी को भी सुना तदनन्तर भी अनिर्णीत अवस्था में अन्दर से सन्तुष्टि नहीं मिली। अकस्मात् मुझे 'मूल में भूल' पुस्तक पढ़ने को मिली, जिससे मुझे अत्यन्त स्पष्ट निर्णय हुआ। तभी से मेरे मन में इसे पुनः प्रकाशित करने की भावना थी, पर संयोग नहीं बना। अब इसका प्रकाशन किया जा रहा है।

प्रस्तुत प्रकाशन की मुद्रणादि व्यवस्था व सुन्दर कलेवर में प्रस्तुत करने का श्रेय जहाँ विभाग के मैनेजर श्री अखिल बंसल को है, वहीं प्रूफ रीडिंग हेतु पं. संजयकुमारजी शास्त्री, बड़ामलहरा का श्रम श्लाघनीय है, इसके लिए दोनों महानुभाव बधाई के पात्र हैं।

साधर्मि विवेकीजन इस उपादान-निमित्त के संवाद को हृदयंगम कर यथार्थ श्रद्धान पूर्वक मूल की भूल को समझपूर्वक निकाल कर अपना आत्मकल्याण करें - ऐसी भावना है।

- ब्र. यशपाल जैन एम.ए.

प्रकाशन मंत्री

पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट

प्रस्तुत संस्करण की कीमत कम करनेवाले दातारों की सूची

१. श्री गम्भीरचन्दजी जैन सेमारीवाले, अहमदाबाद	३०१.००
२. श्री शान्तिनाथजी सोनाज, अकलूज	२५१.००
३. श्री बाबूलाल तोतारामजी जैन, भुसावल	२५१.००
४. श्रीमती श्रीकान्ताबाई ध.प. श्री पूनमचन्दजी छाबड़ा, इन्दौर	२५१.००
५. श्रीमती रश्मिदेवी वीरेशजी कासलीवाल, सूरत	२५१.००
६. ब्र. कुसुम जैन, बाहुबली कुम्भौज	२५०.००
७. श्रीमती पानादेवी मोहनलालजी सेठी, गौहाटी	१०१.००
८. स्व. धापूदेवी ध.प. स्व. ताराचन्दजी गंगवाल की पुण्य स्मृति में, जयपुर	१०१.००
९. श्रीमती सोहनदेवी स्व. तनसुखलालजी पाटनी, जयपुर	१०१.००
१०. श्रीमती शान्तीदेवी धनकुमारजी जैन, जयपुर	१०१.००
११. श्रीमती गुलाबीदेवी लक्ष्मीनारायणजी रारा, शिवसागर	१०१.००

कुल राशि

२०६०.००

भैया भगवतीदासजी कृत

उपादान-निमित्त संवाद

पाद प्रणमि जिनदेव के, एक उक्ति उपजाय ।
उपादान अरु निमित्त को, कहूँ संवाद बनाय ॥१॥
पूछत है कोऊ तहां उपादान किह नाम ।
कहो निमित्त कहिये कहा कब के है इहठाम ॥२॥
उपादान निज शक्ति है जिय को मूल स्वभाव ।
है निमित्त परयोग तैं बन्यो अनादि बनाव ॥३॥
निमित्त कहै मौकों सबै, जानत है जगलोय ।
तेरे नाव न जान ही, उपादान को होय ॥४॥
उपादान कहैं रे निमित्त, तू कहा करै गुमान ।
मौकों जाने जीव वे जो हैं सम्यक्वान ॥५॥
कहैं जीव सब जगत के, जो निमित्त सोई होय ।
उपादान की बात को, पूछे नहीं कोय ॥६॥
उपादान बिन निमित्त तू कर न सकै इक काज ।
कहा भयौ जग ना लखै जानत है जिनराज ॥७॥
देव जिनेश्वर गुरु यती अरु जिन आगमसार ।
इह निमित्त सैं जीव सब पावत हैं भवपार ॥८॥
यह निमित्त इह जीव के मिल्यो अनंतीबार ।
उपादान पलट्यो नहीं तो भटक्यो संसार ॥९॥
कै केवलि कै साधु के निकट भव्य जो होय ।
सो क्षायक सम्यक् लहै यह निमित्त बल जोय ॥१०॥
केवलि अरु मुनिराज के पास रहें बहु लोय ।
पै जाको सुलट्यो धनी क्षायिक ताको होय ॥११॥

हिंसादिक पापन किये जीव नर्क में जाहिं ।
जो निमित्त नहीं काम को तो इम काहे कहाहिं ॥१२॥
हिंसा में उपयोग जहाँ, रहे ब्रह्म के राच ।
तेई नर्क में जात हैं, मुनि नहीं जाहिं कदाच ॥१३॥
दया दान पूजा किये जीव सुखी जग होय ।
जो निमित्त झूठौ कह्यो यह क्यों माने लोय ॥१४॥
दया दान पूजा भली जगत माहिं सुख कार ।
जहं अनुभव को आचरण तहं यह बंधविचार ॥१५॥
यह तो बात प्रसिद्ध है सोच देख उर माहिं ।
नरदेही के निमित्त बिन जिय त्यों मुक्ति न जाहिं ॥१६॥
देह पींजरा जीव को रोकै शिवपुर जात ।
उपादान की शक्ति सों मुक्ति होत रे भ्रात ॥१७॥
उपादान सब जीव पै रोकन हारौ कौन ।
जाते क्यों नहीं मुक्ति में बिन निमित्त के हौं ॥१८॥
उपादान सु अनादि को उलट रहौ जगमाहिं ।
सुलटत ही सूधे चलें सिद्धलोक को जाहिं ॥१९॥
कहूं अनादि बिन निमित्त ही उलट रहौ उपयोग ।
अैसी बात न संभवै उपादान तुम जोग ॥२०॥
उपादान कहे रे निमित्त हम पै कही न जाय ।
अैसे ही जिन केवली देखे त्रिभुवन राय ॥२१॥
जो देख्यो भगवान ने सो ही सांचो आहि ।
हम तुम संग अनादि के बली कहोगे कांहि ॥२२॥
उपादान कहे वह बली जाको नाश न होय ।
जो उपजत विनशत रहे बली कहां ते सोय ॥२३॥

उपादान तुम जोर हो तो क्यों लेत आहार ।
 पर निमित्त के योग सों जीवत सब संसार ॥२४॥
 जो अहार के जोग सों जीवत है जगमांहि ।
 तो वासी संसार के मरते कोऊ नांहि ॥२५॥
 सूर सोम मणि अग्नि के निमित्त लखें ये नैन ।
 अंधकार में कित गयो उपादान दृग दैन ॥२६॥
 सूर सोम मणि अग्नि जो, करे अनेक प्रकाश ।
 नैन शक्ति बिन ना लखें अंधकार सम भास ॥२७॥
 कहै निमित्त वे जीव को मो बिन जग के मांहि ।
 सबै हमारे वश परै हम बिन मुक्ति न जाहिं ॥२८॥
 उपादान कहै रे निमित्त ! जैसे बोल न बोल ।
 तोको तज निज भजत हैं ते ही करें किलोल ॥२९॥
 कहै निमित्त हमको तजैं, ते कैसे शिव जात ।
 पंच महाव्रत प्रगट है और हु क्रिया विख्यात ॥३०॥
 पंच महाव्रत जोग त्रय और सकल व्यवहार ।
 पर कौ निमित्त खपाय के तब पहुँचे भवपार ॥३१॥
 कहै निमित्त जग में वड्यो मोतें बड़ो न कोय ।
 तीनलोक के नाथ सब मो प्रसाद तें होय ॥३२॥
 उपादान कहै तू कहा चहुंगति में ले जाय ।
 तो प्रसाद तें जीव सब दुःखी होहिं रे भाय ॥३३॥
 कहै निमित्त जो दुःख सहै सो तुम हमहि लगाय,
 सुखी कौन तें होत है ताको देहु बताय ॥३४॥
 जो सुख को तू सुख कहै सो सुख तो सुख नांहि ।
 ये सुख दुःख के भूल हैं सुख अविनाशी मांहि ॥३५॥

अविनाशी घट घट वसे सुख क्यों बिलसत नांहि ।
 शुभ निमित्त के योग बिन परे परे बिललाहिं ॥३६॥
 शुभ निमित्त इह जीव को मिल्यो कई भवसार ।
 पै इक सम्यक्दर्श बिन भटकत फिर्यो गंवार ॥३७॥
 सम्यक्दर्श भये कहा त्वरित मुक्ति में जांहि ?
 आगे ध्यान निमित्त है ते शिव को पहुँचाहिं ॥३८॥
 छोर ध्यान की धारणा मोर योग की रीत ।
 तोरि कर्म के जाल को जोर लई शिव प्रीत ॥३९॥
 तब निमित्त हायों तहां अब नहीं जोर बसाय ।
 उपादान शिव लोक में पहुँच्यौ कर्म खपाय ॥४०॥
 उपादान जीत्यो तहां निजबल कर परकाश ।
 सुख अनंत ध्रुव भोगवे अंत न वरन्यो तास ॥४१॥
 उपादान अरु निमित्त ये सब जीवन पै वीर ।
 जो निजशक्ति संभार ही सो पहुँचे भव तीर ॥४२॥
 भैया महिमा ब्रह्म की कैसे वरनी जाय ?
 वचन अगोचर वस्तु है कहिवो वचन बताय ॥४३॥
 उपादान अरु निमित्त को सरस बन्यौ संवाद ।
 समदृष्टि को सरल है मूरख को बकवाद ॥४४॥
 जो जानै गुण ब्रह्म के सो जानै यह भेद ।
 साख जिनागम सो मिलै तो मत कीज्यो खेद ॥४५॥
 नगर आगरा अग्र है जैनी जन को वास,
 तिह थानक रचना करी 'भैया' स्वमतिप्रकाश ॥४६॥
 संवत् विक्रम भूप को सत्तरहसैं पंचास ।
 फाल्गुन पहले पक्ष में दशों दिशा परकाश ॥४७॥

ॐ नमः सिद्धेभ्यः

भैया भगवतीदासजी कृत

उपादान-निमित्त संवाद पठ किये गये

परम पूज्य श्री कानजी स्वामी के प्रवचन

यह उपादान-निमित्त का संवाद है। अनादिकाल से उपादान-निमित्त का झगड़ा चला आ रहा है। उपादान कहता है कि दर्शन-ज्ञान-चारित्रादि गुणों की सावधानी से आत्मा का कल्याणरूपी कार्य होता है। निमित्त कहता है कि शरीरादिक की क्रिया करने से अथवा देव-गुरु-शास्त्र से और शुभभाव से आत्मा का कल्याण होता है। इसप्रकार स्वयं अपनी बात सिद्ध करने के लिए उपादान और निमित्त दोनों युक्तियाँ उपस्थित करते हैं और झगड़े का समाधान यहाँ पर वीतराग शासन में सच्चे ज्ञान के द्वारा होता है।

अनादिकाल से जगत के अज्ञानी जीवों की दृष्टि पर के ऊपर है; इसलिए 'मेरे आत्मा का कल्याण करने की मुझ में शक्ति नहीं है। मैं अपंग-शक्तिहीन हूँ; कोई देव-गुरु-शास्त्र इत्यादि पर मुझे समझा दें तो मेरा कल्याण हो' - इसप्रकार अनादिकाल से अपने आत्मा के कल्याण को पराश्रित मानता है। ज्ञानी की दृष्टि अपनी आत्मा पर है, इसलिए यह मानता है कि आत्मा स्वयं पुरुषार्थ करेगा तो मुक्ति होगी। अपने पुरुषार्थ के अतिरिक्त किसी के आशीर्वाद इत्यादि से कल्याण होगा - यह मानना, सो अज्ञान है। इसप्रकार उपादान कहता है कि आत्मा से ही कल्याण होता है और निमित्त कहता है कि परवस्तु का साथ हो तो आत्मकल्याण हो। इसमें निमित्त की बात बिलकुल झूठ और अज्ञान से परिपूर्ण है। यही बात इस संवाद में सिद्ध की

गई है।

उपादान – अर्थात् वस्तु की सहज शक्ति और आत्मा पर से भिन्न है, देहादिक किसी परवस्तु से आत्मा का कल्याण नहीं होता – इसप्रकार श्रद्धा-ज्ञान करना, सो उपादान कारण है।

निमित्त – अर्थात् अनुकूल संयोगी अन्य वस्तु। जब आत्मा सच्ची श्रद्धा-ज्ञान करता है, तब जो सच्चे देव-शास्त्र-गुरु उपस्थित हों, उन्हें निमित्त कहा जाता है।

देव-गुरु-शास्त्र मुझ से भिन्न हैं और पुण्य-पाप के भाव भी मैं नहीं हूँ। मैं ज्ञानादि अनन्त गुणों का पिण्ड हूँ। इसप्रकार जीव अपनी शक्ति की सम्भाल करता है, सो उपादान कारण है और अपनी शक्ति उपादान है। यहाँ पर उपादान और उपादान कारण का भेद बताया गया है। उपादान त्रिकाली द्रव्य और उपादान कारण पर्याय है। जो जीव उपादान शक्ति की सम्भाल कर उपादान कारण को करता है, उसके मुक्तिरूपी कार्य अवश्य प्रकट होता है।

आगे ४२ वें दोहे में इस सम्बन्ध में कहा गया है कि 'उपादान और निमित्त तो सभी जीवों के होता है; किन्तु जो वीर है, वह निज शक्ति को सम्भाल लेता है और भवसागर को पार करता है।' यहाँ पर निज शक्ति की सम्भाल करना सो उपादान कारण है और वही मुक्ति का कारण है। आत्मा में शक्ति तो बहुत कुछ है, किन्तु जब स्वयं उस शक्ति की सम्भाल करे, तब श्रद्धा-ज्ञान-स्थिरतारूप मुक्ति का उपाय हो; किन्तु अपनी शक्ति की सम्भाल किए बिना मुक्ति का उपाय नहीं हो सकता। यही बताने के लिए इस संवाद में उपादान और निमित्त की एक-दूसरे के विरुद्ध युक्तियाँ दी गई हैं और इस सम्बन्ध में भी सर्वज्ञ भगवान का अन्तिम निर्णय दिया गया है, जिससे उपर्युक्त कथन सिद्ध होता है।

आत्मा का उपादान-स्वभाव, मन, वाणी और देहरहित है। उसे किसी

परवस्तु की सहायता नहीं है – ऐसी सहजशक्ति का जो भान करता है, वह उपादान-स्वभाव को जानता है। उपादान-स्वभाव को जाना, सो उपादान कारण हुआ और उस समय उपस्थित देव-शास्त्र-गुरु इत्यादि निमित्त कहलाता है। उपादान-निमित्त की यह बात बड़ी अच्छी और समझने योग्य है। शास्त्राधार से अपूर्व कथन किया गया है, उसमें पहले मांगलिक रूप में निम्नलिखित दोहा कहा गया है –

(दोहा)

पाद प्रणामि जिनदेव के, एक उक्ति उपजाय।

उपादान अरु निमित्त को, कहूँ संवाद बनाय ॥१॥

अर्थ – जिनेन्द्रदेव के चरणों में प्रणाम करके एक अपूर्व कथन तैयार करता हूँ – उपादान और निमित्त का संवाद बनाकर उसे कहता हूँ।

इस बात को समझने के लिए यदि जीव गहरा उतरकर विचार करे तो उसका रहस्य ज्ञात हो। जैसे आधे मन की दही की छाछ में मक्खन निकालने के लिए यदि ऊपर ही ऊपर हाथ फेरा जाये तो मक्खन नहीं निकलता, किन्तु छाछ को विलोकर भीतर नीचे तक हाथ डालकर मथे, तब मक्खन ऊपर आता है; किन्तु यदि सर्दी के दिनों में ठंडी के कारण आलस्य करके छाछ के भीतर हाथ न डाले तो छाछ में मक्खन नहीं निकलेगा; इसीप्रकार जैनशासन में जैन परम्परा सर्वज्ञदेव के द्वारा कहे गये तत्त्वों में से यदि गहरी तर्कबुद्धि के द्वारा गहरा विचार करके मक्खन निकाले तो मुक्ति हो। उपर्युक्त दोहे में 'उक्ति' शब्द का प्रयोग किया है – उसका अर्थ इसप्रकार किया है।

जिनदेव सर्वज्ञ वीतराग भगवान के चरणकमल में प्रणाम करके अर्थात् विशेष प्रकार से नमस्कार करके मैं एक युक्ति बनाता हूँ अर्थात् तर्क का दोहन करता हूँ। इस संवाद में युक्ति पुरस्सर बात कही गई है, इसलिए समझनेवाले को भी तर्क और युक्ति के द्वारा समझने का परिश्रम करना होगा। यों ही ऊपर ही ऊपर से सुन लेने में समझ में नहीं आयेगा। जैसे छाछ को बिलोने से मक्खन

निकलता है, उसीप्रकार स्वयं ज्ञान में विचार करके समझे तो यथार्थ तत्त्व प्राप्त हो। जैसे घर का आदमी चाहे जितनी नरम रोटी बनावे; किन्तु वह कहीं खिला नहीं देता, वह तो उसे स्वयं खाना होता है; इसीप्रकार श्री सद्गुरुदेव चाहे जैसी सरल भाषा में कहें, किन्तु भाव तो स्वयं ही समझना होगा। तत्त्व को समझने के लिए अपने में विचार करना चाहिए। जिन्हें केवलज्ञान और केवलदर्शन रूपी आत्मलक्ष्मी प्रकट हुई है - ऐसे श्री वीतराग परमात्मा को नमस्कार करके उनकी कही गई बात को न्याय की सन्धि से मैं (भैया भगवतीदास) युक्तिपूर्वक उपादान-निमित्त के संवाद के रूप में कहता हूँ ॥१॥

-प्रश्न-

पूछत है कोऊ तहाँ, उपादान किह नाम।

कहो निमित्त कहिये कहा, कबके है इह ठाम ॥२॥

अर्थ :- यहाँ कोई पूछता है कि उपादान किसका नाम है, निमित्त किसे कहते हैं और उनका सम्बन्ध कब से है, सो कहो ?

उपादान का अर्थ क्या है ? - यह बहुत से लोग नहीं जानते। हिसाब की बहियों में भी उपादान का नाम नहीं आता है। दया इत्यादि करने से धर्म होता है - यह तो बहुत से लोग सुनते और मानते हैं, किन्तु यह उपादान क्या है और निमित्त क्या है ? - इसका स्वरूप नहीं जानते; इसलिए उपादान और निमित्त का स्वरूप इस संवाद में बताया गया है।

दही के होने में दूध उपादान है और छाछ निमित्त है। दही दूध में से होता है, छाछ में से नहीं होता। यदि छाछ में से दही होता हो तो पानी में छाछ डालने से भी दही हो जाना चाहिए, किन्तु ऐसा नहीं होता। इसीप्रकार शिष्य के आत्मा की पर्याय बदलकर मोक्ष होता है। कहीं गुरु की आत्मा बदलकर शिष्य की मोक्षदशा के रूप में नहीं हुआ जाता। शिष्य का आत्मा अपना उपादान है। वह स्वयं समझकर मुक्त होता है, किन्तु गुरु के

आत्मा में शिष्य की कोई अवस्था नहीं होती।

उपादान = 'उप+आदान' उप का अर्थ है - समीप और आदान का अर्थ है - ग्रहण होना। जिस पदार्थ के समीप में से कार्य वा ग्रहण हो, वह उपादान है और उससमय जो परपदार्थ की अनुकूल उपस्थिति हो, सो निमित्त है ॥२॥

अब शिष्य प्रश्न पूछता है - (कोई विरला जीव ही तत्त्व के प्रश्नों को पूछने के लिए खड़ा होता है। जिसे प्यास लगी होती है, वही पानी की प्याऊ के पास जाकर खड़ा होता है; इसीप्रकार जिसे आत्मस्वरूप को समझने की प्यास लगी है और उस ओर की जिसे आन्तरिक आकांक्षा है, वही जीव सत्समागम से पूछता है।) हे प्रभु ! आप उपादान किसे कहते हैं और निमित्त किसे कहते हैं वे उपादान तथा निमित्त एक स्थान पर कब से एकत्रित हुए हैं? दोनों का संयोग कब से है ?

ऐसे जिज्ञासु शिष्य के प्रश्न का उत्तर देते हुए कहते हैं कि -

उपादान निज शक्ति है, जिय को मूल स्वभाव।

है निमित्त पर योग तैं, बन्यो अनादि बनाव ॥३॥

अर्थ :- उपादान अपनी निजशक्ति है। वह जीव का मूल स्वभाव है और पर संयोग निमित्त है, उनका सम्बन्ध अनादिकाल से बना हुआ है।

यहाँ पर कहा गया है कि जीव का मूल स्वभाव उपादान है; क्योंकि यहाँ पर जीव की ही बात लेनी है, इसलिए यह बताया है कि जीव की मुक्ति में उपादान क्या है और निमित्त क्या है ? जीव का मूल स्वभाव उपादान के रूप में लिया गया है। यहाँ पर समस्त द्रव्यों की सामान्य बात नहीं है; किन्तु विशेष जीवद्रव्य की मुक्ति की ही बात है।

जीव की पूर्ण शक्ति उपादान है यदि उसकी पहचान करे तो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप उपादान कारण प्रकट हो और मुक्ति प्राप्त हो ! जीव का मूल

स्वभाव ही मुक्ति प्राप्त करता है और वह अन्तर में है। अन्तरंग की शक्ति में से मुक्ति प्रकट होती है; किसी देव, गुरु, शास्त्र, वाणी अथवा मनुष्य शरीर इत्यादि पर की सहायता से जीव की मुक्ति नहीं होती।

प्रश्न – जो सच्चे गुरु होते हैं, वे भूले हुआ को मार्ग तो बतलाते ही हैं, इसलिए उनकी इतनी सहायता तो मानी ही जायेगी ?

उत्तर – जो भूला हुआ है, वह पूछकर निश्चय करता है; सो किसके ज्ञान से निश्चय करता है, भूले हुए के ज्ञान से अथवा गुरु के ज्ञान से ? गुरु कहीं किसी के ज्ञान में निश्चय नहीं करा देते, किन्तु जीव स्वयं अपने ज्ञान में निश्चय करता है; इसलिए जो समझता है, वह अपनी ही उपादानशक्ति से समझता है।

जैसे किसी को सिद्धपुर जाना है। उसने किसी जानकार से पूछा कि सिद्धपुर कहाँ है ? तब उसने जवाब दिया कि (१) यहाँ से सिद्धपुर आठ कोस दूर है। (२) मार्ग में जाते हुए बीच में दो बड़े शीतल छाया वाले वटवृक्ष मिलेंगे। (३) आगे चलने पर एक मीठे पानी का अमृत-सरोवर मिलेगा और उसके बाद तत्काल ही सिद्धपुर आयेगा। इसप्रकार जानकार ने कहा, किन्तु उस पर विश्वास करके निश्चय कौन करता है ? बतानेवाला या भूला हुआ आदमी ? जो भूला है, वह अपने ज्ञान में निश्चय करता है, इसीप्रकार मुक्ति की आकांक्षा रखनेवाला शिष्य पूछता है कि मुक्ति का अन्तरंग कारण और बहिरंग कारण क्या है ? और प्रभो ! मेरी सिद्धदशा कैसे प्रकट होगी, उसका उपाय-मार्ग क्या है ? श्रीगुरु उसका उत्तर देते हैं –

(१) आत्मा की पहिचान से और स्वाश्रय की पूर्णता से सिद्धदशा प्रकट होती है। (२) आत्मा की सच्ची पहिचान और श्रद्धा करने पर स्वभाव की परमशान्ति का अनुभव होता है। आत्मा की श्रद्धा और ज्ञानरूपी दो वटवृक्षों की शीतलता सिद्धदशा के मार्ग में आती है। (३) उसके बाद आगे बढ़ने पर चारित्र्यदशा प्रकट होती है अर्थात् स्वरूप-रमणतारूप अमृत-सरोवर

आता है। इसप्रकार सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र्यरूप मोक्षमार्ग पूर्ण होने पर केवलज्ञान और सिद्धदशा प्रकट होती है। यहाँ पर उपादान-निमित्त सिद्ध करना है। जब शिष्य तैयार होकर श्रीगुरु से पूछता है कि प्रभु ! मुक्ति कैसे होगी ? तब श्रीगुरु उसे मुक्ति का उपाय बताते हैं, किन्तु जिसप्रकार उपाय बताया उसीप्रकार विश्वास लाकर निश्चय कौन करता है ? बतानेवाला या भूला हुआ ? जो अपने ज्ञान में भूला हुआ है, वही यथार्थ समझ से भूल को दूर करके अपने ज्ञान में निश्चय करता है।

यह तो मुक्ति का उपाय है, उसकी महिमा को जानना चाहिए। जैसे कोई हीरा-माणिक की कीमत को जाने और जवाहरात की दुकान पर बैठे तो झट लाखों की आमदनी हो और कपड़ों को मैल न लगे; किन्तु यदि हलवाई की दुकान पर बैठे तो जल्दी कमाई न हो और कपड़ों को मैल लगे। इसीप्रकार यदि आत्मा के चैतन्यस्वभाव को पहिचानकर उसकी कीमत करे तो मोक्षरूपी आत्मलक्ष्मी झट प्राप्त हो जाए। **स्वरूप की शक्ति का भान सो हीरे का व्यापार है, उससे मुक्तिलक्ष्मी झट प्राप्त हो जाती है और आत्मा को कर्ममल नहीं लगता। आत्मा की प्रतीति के बिना कभी भी मुक्ति नहीं होती और कर्ममल लग जाता है।**

आत्मा के अन्तरंग में से आत्मा के गुणों को ग्रहण किया जा सकता है, इसलिए आत्मा उपादान है। जिसमें से गुण का ग्रहण हो, वह उपादान है। चिदानन्द भगवान आत्मा अपनी अनन्त शक्ति से देह में विराजता है, उसे पहिचानकर उसमें से मुक्ति का माल निकालना है। यहाँ उपादान का स्वरूप बताया गया है। अब निमित्त का स्वरूप बताते हैं –

‘है निमित्त पर योग तैं’ – अर्थात् जब आत्मा अपने स्वरूप की पहिचान करता है, तब जो सच्चे देव-शास्त्र-गुरु संयोगरूप में उपस्थित हों, वे निमित्त कहलाते हैं। उपादान-निमित्त का यह सम्बन्ध अनादिकालीन है। सिद्धदशा में भी आत्मा की शक्ति उपादान है और स्थिति में अधर्मद्रव्य,

परिणामन में काल –द्रव्य इत्यादि निमित्त है। उपादान और निमित्त यह दोनों अनादिकालीन हैं।

कोई यह कहे कि “यदि कोई यह माने कि सब मिलकर एक आत्मा ही है और कोई यह माने कि अनन्त आत्मा पृथक् हैं, किन्तु सबका साध्य तो एक ही है न !” तो यह बात बिलकुल गलत है। जिसने एक ही आत्मा को माना है, वह उपादान-निमित्त इन दो वस्तुओं को नहीं मानता; इसलिए वह अज्ञानी है और जो यह मानता है कि “अनन्त आत्मा प्रत्येक भिन्न-भिन्न है, मैं स्वाधीन आत्मा हूँ” – उसने वस्तु के यथार्थ स्वरूप को जान लिया है। यह बात गलत है कि सबका साध्य एक ही है। ज्ञानी-अज्ञानी दोनों के साध्य पृथक् ही हैं।

जब आत्मा अपनी उपादान शक्ति से औंधा गिरता है, तब कुगुरु-कुदेव-कुशास्त्र इत्यादि निमित्तरूप होते हैं और जब अपनी उपादान शक्ति से सीधा होता है, तब सच्चे देव-शास्त्र-गुरु निमित्तरूप होते हैं। निमित्त तो परवस्तु की उपस्थिति मात्र है, वह कहीं कुछ करवाता नहीं है। अपनी शक्ति से उपादान स्वयं कार्य करता है। उपादान और निमित्त दोनों अनादि हैं, किन्तु निमित्त-उपादान कुछ लेता-देता नहीं है ॥३॥

- निमित्त का तर्क -

निमित्त कहै मौकों सबै, जानत है जग लोय ।

तेरो नाँव न जान ही, उपादान को होय ॥४॥

अर्थ :- निमित्त कहता कि जगत के सभी लोग मुझे जानते हैं और उपादान कौन है, उसका नाम तक नहीं जानते।

समस्त जगत के लोग निमित्त का नाम जानते हैं। सहारा हो तो बैल चढ़े; खान-पान की अनुकूलता हो तो धर्म हो; मानव देह हो तो मुक्ति हो – इसप्रकार निमित्त से कार्य होता है। यों समस्त विश्व के जीव मानते हैं और इसलिए वे निमित्त को जानते हैं; परन्तु उपादान को कोई नहीं

जानता। सारा संसार यह मानता है कि यदि बाह्य निमित्त ठीक हो तो आत्मा सुखी होता है, किन्तु उपादान का तो कोई नाम तक नहीं जानता; इसलिए हे उपादान ! तू मुफ्त की बड़ाई क्यों किया करता है, क्या लँगड़ा आदमी बिना लकड़ी के चल सकता है ? लकड़ी का निमित्त आवश्यक है, इसलिए निमित्त का ही बल है। इसप्रकार निमित्त तर्क करता है, किन्तु निमित्त का यह तर्क गलत है। लँगड़ा अपनी योग्यता से चलता है। यदि लकड़ी के कारण चलता हो तो लकड़ी से मुर्दे को भी चलना चाहिए, किन्तु मुर्दे में चलने की योग्यता नहीं है; इसलिए वह नहीं चलता। इसका अर्थ यह है कि उपादान की शक्ति से ही कार्य होता है।

निमित्त कहता है कि यदि आप निमित्त के बल को नहीं मानते तो भगवान की प्रतिमा को नमस्कार क्यों करते हो ? वह भी निमित्त है या नहीं ? और फिर मुक्ति प्राप्त करने के लिए मानव शरीर तो चाहिए ही ? और यदि कान ठीक हों, तभी तो सुनकर धर्म प्राप्त होता है ? तात्पर्य यह है कि सर्वत्र निमित्त का ही बोलबाला है। दुनिया में किसी से पूछो तो सब यही कहेंगे।

इस संवाद से यह सिद्ध हो जायेगा कि निमित्त की ओर से दिये गये उपर्युक्त सभी तर्क वृथा हैं। निमित्त ने जो कुछ कहा है, वह सब भवभ्रमण करनेवाले जगत के अज्ञानी जीव मानते हैं, वे उपादान को नहीं पहिचानते। इस संवाद में उपादान-निमित्त के सिद्धान्त की बात है। उपादान-निमित्त दोनों अनादि-अनन्त हैं। इसमें उन दोनों का यथार्थ ज्ञान कराने के लिए उपदेश है।

अनादिकाल से जगत के अज्ञानी जीव यह नहीं जानते कि उपादान कौन है ? वे तो निमित्त को ही जानते हैं। छोटा बालक भी कहता है कि यदि अध्यापक हो तो अक्षर सीखे जायें, परन्तु यदि अध्यापक न हो तो कौन सिखाये ? किन्तु सच तो यह है कि जो प्रारम्भिक अक्षर अ आ इत्यादि सीखता है, वह उसके सीखने की अपनी शक्ति से सीखता है। किसी भैसे

इत्यादि में अ आ इत्यादि सीखने की शक्ति नहीं है, इसलिए वे सीख नहीं सकते। समस्त जगत निमित्त को जानता है, बालक से लेकर माँ, धाता, अज्ञानी या मुनि से पूछो कि मुक्ति कैसे होती है ? तो कोई कहेगा कि बाह्य क्रिया से और कोई कहेगा कि पुण्य से मुक्ति होती है, किन्तु वे कोई आत्मा की मूल उपादान शक्ति को नहीं जानते। निमित्त ने अज्ञानियों को अपने पक्ष में रखकर यह युक्ति रखी है।

अब अज्ञानियों को अपने पक्ष में लेकर उपादान उसका उत्तर देता है

-

उपादान कहै रे निमित्त, तू कहा करै गुमान।

मोकों जानें जीव वे, जो हैं सम्यक्वान ॥५॥

अर्थ :- उपादान कहता है कि हे निमित्त ! तू अभिमान किसलिए करता है ? जो जीव सम्यग्ज्ञानी हैं, वे मुझे जानते हैं। आत्मा के स्वभाव को समझनेवाले ज्ञानियों को अपने पक्ष में रखकर उपादान कहता है कि - हे निमित्त ! तू अभिमान क्यों करता है ? तेरा अभिमान मिथ्या है। जगत के अज्ञानियों के झुण्ड तुझे जानते हैं तो इसमें तेरी क्या बड़ाई है ? किन्तु मुझे सभी ज्ञानी जानते हैं तो इसमें तेरी क्या बड़ाई है ? किन्तु मुझे सभी ज्ञानी जानते हैं। राख तो घर-घर में हर एक चूल्हे में होती है, इसलिए कहीं राख कीमती नहीं मानी जाती और हीरे के व्यापारी थोड़े होते हैं; इसलिए हीरे की कीमत कम नहीं हो जाती। इसप्रकार जगत के बहुत से जीव यह मानते हैं कि दूसरे से काम होता है, किन्तु इतने मात्र से कहीं पर से कार्य नहीं हो जाता। उपादान-स्वभाव की बात को तो ज्ञानी ही जानते हैं। अज्ञानियों की वहाँ गति नहीं है।

निमित्त से कार्य नहीं होता, तथापि जब जीव स्वयं समझता है; तब सच्चे गुरु का ही निमित्त होता है। गुरु से ज्ञान नहीं और गुरु के बिना ज्ञान नहीं होता। सच्चे गुरु के बिना त्रिकाल में भी ज्ञान नहीं हो सकता और

त्रिकाल में भी गुरु किसी को ज्ञान नहीं दे सकते। जब जीव स्वयं की शक्ति से सच्ची पहिचान करता है, तब सत्पुरुष की ही वाणी की उपस्थिति होती है, किन्तु सत्पुरुष की वाणी से जीव समझता नहीं है। जीव यदि स्वतः नहीं समझता तो वाणी को निमित्त नहीं कहा जा सकता।

प्रश्न - आप कहते हैं कि बिना निमित्त के कार्य नहीं होता और निमित्त से भी नहीं होता, किन्तु इन बातों में से यथार्थ कौन-सी है ?

उत्तर - दोनों ही यथार्थ हैं; क्योंकि निमित्त उपस्थित तो रहता ही है और निमित्त से कोई कार्य नहीं होता। इसप्रकार दोनों पहलुओं को समझ लेना चाहिए। जैसे दो आँखोंवाला आदमी सब कुछ ठीक देखता है, एक आँखवाला काना आदमी सब कुछ ठीक नहीं देख पाता है और दोनों आँखों से अंधा आदमी कुछ भी नहीं देख सकता। इसीप्रकार जो उपादान और निमित्त को वे जैसे हैं, उसीप्रकार जाने तो ठीक जाननेवाला (सम्यग्ज्ञानी) है और जो यह मानता है कि निमित्त नहीं है अथवा निमित्त से कार्य होता है तो उपर्युक्त (काने के) दृष्टान्त की भाँति उसके ज्ञान में भूल है और जो निमित्त-उपादान दोनों नहीं हैं - इसप्रकार दोनों को ही नहीं जानता-मानता, वह अंधे की भाँति बिलकुल ज्ञानहीन है।

प्रथम दोनों आँखों से सब कुछ ठीक देख-जानकर पश्चात् खास पदार्थ की ओर की एकाग्रता के लिए दूसरे पदार्थ की ओर से आँख बन्द कर ले तो यह ठीक है। इसीप्रकार पहले उपादान-निमित्त को ठीक जानकर पश्चात् स्वरूप में एकाग्रता करने के लिए निमित्त का लक्ष्य छोड़ देना ठीक है, किन्तु पहले उपादान-निमित्त को वह जैसा है, उसीप्रकार यथार्थरूप में समझ लेना चाहिए।

जब आत्मस्वभाव की प्रतीति करता है, तब निमित्त होता है। इसप्रकार ज्ञान करने के लिए दोनों हैं, किन्तु आदरणीय दोनों नहीं हैं। आदरणीय तो उपादान है और निमित्त हेय है। उपादान की शक्ति से कार्य होता है। जो

सम्यग्ज्ञानी है अर्थात् आत्मा को पहिचाननेवाले हैं, वे ही उपादानशक्ति को जानते हैं।

निमित्त कहता है कि -

कहैं जीव सब जगत के, जो निमित्त सोई होय ।

उपादान की बात को, पूछे नहीं कोय ॥६॥

अर्थ - जगत के सब जीव कहते हैं कि जैसा निमित्त होता है, वैसा ही कार्य होता है। उपादान की बात को तो कोई पूछता ही नहीं है।

निमित्त अपनी बलवत्ता बताने के लिए कहता है कि यदि अनुकूल-ठीक निमित्त हो तो काम हो; रोटी मिले तो जीवन रहे, मानव-देह मिले तो मुक्ति हो, काल ठीक हो तो धर्म हो; इसप्रकार सारी दुनिया कहती है, किन्तु यह कौन कहता है कि मनुष्य शरीर के बिना मुक्ति होती है ? इसलिए देखो, शरीर के निमित्त से ही काम होता है न ? और यदि आप निमित्त से कुछ नहीं मानते हो तो भगवान की प्रतिमा को क्यों मानते हो ? इससे सिद्ध हुआ कि निमित्त ही बलवान है।

निमित्त का यह तर्क ठीक नहीं है। मिथ्यात्व को जीतनेवाले जैन स्वतन्त्र वस्तुस्थिति को मानते हैं। भगवान की प्रतिमा के कारण अथवा उस ओर के राग के कारण धर्म नहीं मानते। प्रतिमा की ओर का जो शुभराग है, वह अशुभराग से बचने के लिए है। जैन अर्थात् सम्यग्दृष्टि जीव राग से या पर से कदापि धर्म नहीं मानते। जैन तो आत्मस्वभाव से धर्म मानते हैं।

सम्यग्दृष्टि जीव आत्मस्वभाव की प्रतीति होने पर जब शुद्धस्वभाव में स्थिर नहीं रह सकता, तब अशुभराग को छोड़कर उसके शुभराग आता है और उस राग में उपस्थित वीतराग प्रतिमा निमित्तरूप होती है। स्वयं अशुभ भाव से बचता है - इतना लाभ है, किन्तु प्रतिमा से अथवा अवशिष्ट राग से यदि आत्मा का लाभ माने तो वह मिथ्यादृष्टि है। जब सम्यग्दृष्टि को शुभराग होता है, तब उसमें प्रतिमा निमित्तरूप होती है। यह न जाने तो

भी वह मिथ्यादृष्टि है। इसमें निमित्त का ज्ञान कराने की बात है, किन्तु यह नहीं है कि निमित्त से कोई कार्य होता है।

आत्मस्वरूप की पहिचान के बाद जबतक स्वरूप की पूरी भक्ति न हो अर्थात् वीतरागता न हो, वहाँ बीच में शुभराग आये बिना नहीं रहता और शुभराग के निमित्त भी होते हैं, किन्तु जैन-सम्यक्त्वी राग से अथवा निमित्त से धर्म नहीं मानते। जो राग या निमित्त से धर्म मानता है, वह मिथ्यादृष्टि है।

निमित्त कहता है कि भले ही सम्यक्त्वी राग से या निमित्त से धर्म नहीं मानते, किन्तु यदि सामने सुई पड़ी हो तो सुई का ज्ञान होगा या कैची का ? अथवा सामने आदमी का चित्र देखकर आदमी का ज्ञान होगा या घोड़े का ? सामने जैसा निमित्त होगा, वैसा ही तो ज्ञान होगा। इसका यह अर्थ हुआ कि निमित्त से ही ज्ञान होता है, इसलिए निमित्त को ही बलवान मानना होगा। निमित्त का यह तर्क है। निमित्त का कथन बहुत लम्बा है। अज्ञानी ऐसा मानते हैं कि जो भी होता है, वह निमित्त से होता है।

उपादान को जाननेवाले ज्ञानी कहते हैं कि निमित्त से ज्ञान होता ही नहीं, किन्तु उपादान की शक्ति से ही होता है। ज्ञान तो अपनी स्मृति से होता है। सुई को देखने से अपने ज्ञान की स्मृति नहीं हुई। सुई को देखने का काम ज्ञान ने किया या सुई ने ? ज्ञान से ही जानने का कार्य हुआ है। यदि सुई से ज्ञान होता हो तो अंधे आदमी के सामने सुई रखने पर उसे तत्सम्बन्धी ज्ञान होना चाहिए; किन्तु ऐसा नहीं होता; क्योंकि अंधे में वह शक्ति ही नहीं है। सुई तो जड़ है, जड़ में से ज्ञान नहीं आता। अज्ञानी की दृष्टि पर-निमित्त पर होने से वह स्वाधीन ज्ञान को नहीं जानता, इसलिए वह मानता है कि पर के कारण से ज्ञान हुआ है; अज्ञानी उपादान स्वरूप की बात भी नहीं पूछते। “चावल बिना अग्नि के पक सकते हैं ? कदापि नहीं, इसलिए चावल अग्नि

से पके या चावल से ?” अग्नि से चावल पकते हैं - यह अंधदृष्टि से दिखाई देता है, किन्तु स्पष्टरूप से तो चावल चावल से ही पके हैं। पाकरूप अवस्था चावल में ही हुई है, अग्नि में नहीं। चावल में ही स्वतः पकने की शक्ति है, इसलिए वे पके हैं। वे अग्नि अथवा पानी से नहीं पके; इसीप्रकार रोटी भी स्वतः पकी है, अग्नि अथवा तवे से नहीं पकी है।

निमित्त अपनी युक्ति को रखता हुआ कहता है कि - हे उपादान ! जगत में यह कौन कहता है कि रोटी स्वतः ही पकी है, अग्नि से रोटी नहीं पकी ? तू समस्त विश्व से ही पूछकर देख। ‘गेहूँ के परमाणुओं की जब पक्की अवस्था होनी थी, तब अग्नि और तवा मौजूद था; किन्तु रोटी नहीं बनी; इसप्रकार की तेरी लम्बी-लम्बी बातें जगत में कौन करता है ? सीधी और स्पष्ट बात है कि अग्नि से रोटी पकी है। भला ! इसमें क्या पूछना है ? इसलिए यह बात गलत है कि उपादान की शक्ति से ही कार्य होता है।

उपादान उत्तर देता है -

उपादान बिन निमित्त तू, कर न सके इक काज ।

कहा भयो जग ना लखै, जानत हैं जिनराज ॥

अर्थ :- उपादान कहता है कि अरे निमित्त ! एक भी कार्य बिना उपादान के नहीं हो सकता - इसे जगत नहीं जानता तो क्या हुआ जिनराज तो इसे जानते हैं।

उपादान जिनराज को अपने पक्ष में रखकर कहता है कि हे निमित्त ! तू रहने दे ! जगत के प्रत्येक पदार्थ के कार्य अपनी शक्ति से ही हो रहे हैं, कोई पर उसे शक्ति नहीं देता। यदि जीव इसप्रकार के स्वरूप को समझे तो उसे अपने भाव की ओर देखने का अवकाश (अवसर) रहे और अपने भाव में दोषों को दूर करके गुण ग्रहण करे, किन्तु यदि ‘कर्म मुझे हैरान

करते हैं और सद्गुरु मुझे तार देंगे’ - इसप्रकार निमित्त से कार्य का होना मानेगा तो उसमें कहीं भी स्वयं तो आया ही नहीं, उसमें अपनी ओर देखने का अवकाश ही नहीं रहा और केवल पराधीन दृष्टि रह गई।

रोटी अग्नि से नहीं पकी, किन्तु निज में ही वह विशेषता है कि वह पकी है। अग्नि और तवे के होने पर भी कहीं रेत नहीं पकती; क्योंकि उसमें वैसी शक्ति नहीं है। जो पक्व पर्याय हुई है, वह रोटी की हुई है या तवे की ? रोटी स्वयं उस पर्यायरूप हुई है; इसलिए रोटी स्वयं पकी है।

यदि शिष्य के उपादान में समझने की शक्ति न हो तो गुरु क्या करे ?

श्री गुरु भले ही लाख प्रकार से समझायें, किन्तु शिष्य को अपनी शक्ति के बिना समझ में नहीं आ सकता, इसलिए उपादान के बिना एक भी कार्य नहीं हो सकता। निमित्त ने कहा था कि जगत के अंधे प्राणी उपादान के स्वरूप को नहीं समझते तो क्या हुआ, परन्तु त्रिलोकीनाथ सर्वज्ञदेव ही बस हैं। हजारों भेड़ों के सामने एक सिंह ही पर्याप्त है। जहाँ सिंह आता है, वहाँ सभी भेड़ें पूँछ दबाकर भाग जाती हैं। इसीप्रकार जगत के अनन्त जीवों का यह अभिप्राय है कि ‘निमित्त से काम होता है’, किन्तु वे सब अज्ञानी हैं; इसलिए उनका अभिप्राय यथार्थ नहीं है और ‘उपादान शक्ति से ही सर्व कार्य होते हैं’ - यह माननेवाले थोड़े ही जीव हैं, तथापि वे ज्ञानी हैं; उनका अभिप्राय सच है। **सत्य का संख्या के साथ सम्बन्ध नहीं होता।**

छप्पन के अकाल में पशुओं में खड़े रहने की भी शक्ति नहीं रही थी। यदि उन्हें सहारा देकर खड़ा भी किया जाता तो भी वे गिर पड़ते थे। जहाँ भूखे पशु में निज में ही खड़े रहने की शक्ति न हो, वहाँ बाह्य आधार के बल से कैसे खड़ा रखा जा सकता है ? यदि उपादान में ही शक्ति न हो तो किसी निमित्त के द्वारा कार्य नहीं हो सकता।

आत्मा के स्वभाव से ही आत्मा के सब काम होते हैं। पुण्य-पाप के परिणाम स्वयं करने से होते हैं, स्वयं जैसे परिणाम करे वैसे होते हैं। दूसरे जीवों को आशीर्वाद मिल जाए तो भला हो और पुण्य का समुद्र फटकर आत्मा की मुक्ति हो जाए यह बात गलत है। आत्मा का कार्य पराधीन नहीं है। भगवान की साक्षात् उपस्थिति भी उसे तारने के लिए समर्थ नहीं है और शिरच्छेद करनेवाला शत्रु भी डुबोने के लिए समर्थ नहीं है। 'प्रत्येक पदार्थ सदा भिन्न है, मैं भिन्न आत्मा हूँ और तू भिन्न आत्मा है, मैं तुझे कुछ भी नहीं कर सकता' तू अपने भाव से समझे तो तेरा कल्याण हो' - इसप्रकार भगवान तो स्वतंत्रता की घोषणा करके सदा उपादान पर उत्तरदायित्व डालते हैं। उपादान की जागृति के बिना कदापि कल्याण नहीं होता ॥७॥

निमित्त कहता है कि -

देव जिनेश्वर गुरु यति, अरु जिन आगम सार ।

इह निमित्त से जीव सब, पावत हैं भवपार ॥८॥

अर्थ :- निमित्त कहता है कि जिनेश्वरदेव, निर्ग्रन्थ गुरु और वीतराग का आगम उत्कृष्ट है - इन निमित्तों के द्वारा सभी जीव भव का पार पाते हैं।

जिनेश्वरदेव श्री सर्वज्ञ भगवान को माने बिना आत्मा की मुक्ति नहीं होती। किसी कुदेवादि को मानने से मुक्ति नहीं होती, इसलिए पहले जिनेश्वरदेव को पहचानना चाहिए। इसप्रकार पहले निमित्त की आवश्यकता होती है, इसलिए पचास प्रतिशत मेरी सहायता से कार्य होता है, यह निमित्त का तर्क है।

यहाँ पर जीव जब अपना कल्याण करता है, तब निमित्त के रूप में श्री जिनेश्वरदेव ही होते हैं, उनके अतिरिक्त कुदेवादि तो निमित्तरूप कदापि नहीं होते - इतना सत्य है; किन्तु श्री जिनेश्वरदेव आत्मा का कल्याण कर

देते हैं अथवा पचास प्रतिशत सहायता करते हैं - यह बात ठीक नहीं है।

सच्चे देव, निर्ग्रन्थ गुरु और त्रिलोकीनाथ परमात्मा के मुख से निकली हुई ध्वनि अर्थात् आगमसार - इन तीन निमित्तों के बिना मुक्ति नहीं होती। यहाँ पर 'आगमसार' कहा है; इसलिए आगम के नाम पर दूसरी अनेक पुस्तकें प्रचलित हैं, उनकी यहाँ पर बात नहीं है; किन्तु सर्वज्ञ की वाणी से परम्परा से आये हुए सत्शास्त्रों की बात है। अन्य कोई कुदेव, कुगुरु अथवा कुशास्त्र तो सत् का निमित्त भी नहीं हो सकता। सच्चे देवादि ही सत् के निमित्त हो सकते हैं। इतनी बात तो बिलकुल सच है, उसी को पकड़कर निमित्त कहता है कि भाई उपादान ! अपने ही एकान्त को नहीं खींचना चाहिए, कुछ निमित्त का भी विचार करना चाहिए अर्थात् वह कहना चाहता है कि निमित्त भी सहायक होता है।

निमित्त के तर्क का एक अंश इतना सत्य है कि आत्मकल्याण में सच्चे देव, गुरु, शास्त्र ही निमित्तरूप में उपस्थित होते हैं, उनकी उपस्थिति के बिना त्रिकाल में भी कोई मुक्ति नहीं पा सकता। सभी मार्ग समान हैं - यों माननेवाला तीनकाल और तीनलोक में सम्यग्दर्शन को नहीं पा सकता; प्रत्युत वह मिथ्यात्व के महापाप की पुष्टि करता है अर्थात् सर्वज्ञ वीतरागदेव, साधक संत, मुनि और सर्वज्ञ की वाणी ही निमित्त होती है - इतना तो सत्य है, किन्तु उससे आत्मा का कल्याण नहीं होता। वह आत्महित में सहायक नहीं है, कल्याण तो आत्मा स्वयं स्वतः समझे, तभी होता है।

समझने की शक्ति तो सभी आत्माओं में त्रिकाल है। जब उस शक्ति की सम्भाल करके आत्मा समझता है, तब निमित्त के रूप में परवस्तु सच्चे देव इत्यादि ही होते हैं। कुदेवादि को मानता हो और उसे सच्ची समझ हो यह नहीं हो सकता - इस बात को आगे रखकर निमित्त कहता है कि पहले मेरी ही आवश्यकता है, मुझसे ही कल्याण होता है।

उपादान उसके इस तर्क का खण्डन करता हुआ कहता है कि -

यह निमित्त इस जीव के, मिल्यो अनन्ती बार ।

उपादान पलट्यो नहीं, तो भटक्यो संसार ॥९॥

अर्थ :- उपादान कहता है कि यह निमित्त इस जीव को अनन्तबार मिला, किन्तु उपादान जीव स्वयं नहीं बदला; इसलिए वह संसार में भटकता रहा ।

यदि देव-गुरु-शास्त्र का निमित्त आत्मकल्याण कर देता हो तो यह जीव साक्षात् त्रिलोकनाथ के पास अनन्त बार गया; फिर भी समझे बिना ज्यों का त्यों वापिस आ गया । उपादान अपनी शक्ति से नहीं समझा । भगवान कोई अपूर्व स्वरूप कहते हैं, यों परमार्थ को समझने की चिन्ता नहीं की और व्यवहार की स्वयं मानी हुई बात के आने पर वह मान लेता है कि मैं यही कहता था और भगवान ने कहा है । इसप्रकार अपने गज (नाप) से भगवान का नाप करके विपरीत पकड़ को ही दृढ़ करता है; निमित्त भले ही सर्वोत्कृष्ट हो तथापि उपादान न बदले तो उसे सत् समझ में नहीं आता । अनन्त बार सच्चे रत्नादिक की सामग्री को जुटाकर साक्षात् तीर्थकर की पूजा की, किन्तु निमित्त के अवलम्बन से रहित अपने स्वाधीन स्वरूप को नहीं समझा, इसलिए धर्म नहीं हुआ - इसमें तीर्थकर क्या करें !

सच्चे ज्ञानी गुरु और सत् शास्त्र भी अनन्त बार मिले, किन्तु स्वयं अन्तरंग स्वभाव को समझकर अपनी दशा को नहीं बदला; इसलिए जीव संसार में ही भटकता रहा ।

निमित्त ने कहा था कि - देव-गुरु-शास्त्र के निमित्त को पाकर जीव भव पार हो जाता है । उसके विरोध में उपादान ने कहा कि उपादान-जीव स्वयं धर्म को नहीं समझा तो सच्चे देव, गुरु, शास्त्र के मिलने पर भी संसार में परिभ्रमण करता है । यदि जीव स्वयं सत् को समझ ले तो देव-गुरु-शास्त्र को समझने का निमित्त कहा जाये, किन्तु यदि जीव समझे ही नहीं तो निमित्त कैसे कहलाये ? यदि उपादान स्वयं कार्यरूप हो तो प्रस्तुत वस्तु को निमित्त

कहा जा सकता है, किन्तु उपादान स्वयं कार्यरूप में हो ही नहीं तो निमित्त भी नहीं कहा जा सकता ।

प्रत्येक लट में तेल डालकर मस्तक सुन्दर बनाया - यह तभी तो कहा जायेगा, जब मस्तक में बाल की लटें हों, किन्तु यदि सिर में बाल ही न हों तो उपमा कहाँ लगेगी ! इसलिए कार्य तो उपादान के ही अधीन होता है ।

सच्चे देव-गुरु-शास्त्र के निमित्त के बिना कदापि सत्य नहीं समझा जा सकता, किन्तु इससे अपनी समझने की तैयारी हो; तब देव, गुरु, शास्त्र को ढूँढने के लिए जाना पड़े - ऐसा उपादान पराधीन नहीं है । हाँ, ऐसा नियम अवश्य है कि जहाँ अपनी तैयारी होती है, वहाँ निमित्त का योग अवश्य होता ही है । धर्मक्षेत्र महाविदेह में बीस महा धर्मधुरंधर तीर्थकर तो सदा विद्यमान होते हैं । महाविदेह में तीर्थकर न हों - यह कदापि नहीं हो सकता । यदि अपनी तैयारी हो तो चाहे जहाँ सत् का निमित्त का योग मिल ही जाता है और यदि अपनी तैयारी न हो तो सत् निमित्त का योग मिलने पर भी सत् का लाभ नहीं होता । यहाँ पर संवाद में निमित्त की ओर से तर्क करनेवाला जीव ऐसा लिया है, जो सयाना है; समझने के लिए तर्क करता है और जो अन्त में उपादान की सब यथार्थ बातों को स्वीकार करेगा । वह ऐसा हठाग्रही नहीं है कि अपनी ही बात को खींचता रहे । वहाँ पर ऐसे ही जीव की बात है, जो सत्य-असत्य का निर्णय करके सत्य को तत्काल ही स्वीकार करे ।

देहादि की क्रिया से मुक्ति होती है अथवा पुण्य से धर्म होता है - इसप्रकार जीव ने अपनी विपरीत मान्यता बना रखी है । ऐसी स्थिति में भगवान के पास जाकर उनका उपदेश सुनकर भी जीव को धर्म का किंचित्मात्र भी लाभ नहीं हुआ । भगवान तो कहते हैं कि आत्मा देह की क्रिया कर ही नहीं सकता - यह बात उसके ज्ञान में नहीं जमी । यदि स्वयं समझे तो लाभ हो और तब भगवान इत्यादि को निमित्त कहा जाए । सच्चे

निमित्त के बिना ज्ञान नहीं होता, किन्तु सच्चे निमित्त के होने पर भी स्वयं न समझे तो ज्ञान नहीं होता। तो फिर निमित्त ने क्या किया? यह तो मात्र उपस्थित रहकर अलग रहा।

सामान्यतया लोग अनेक बार कहा करते हैं कि “मैंने तो उसे बहुत कहा, किन्तु वह ठप्प हो गया है” अर्थात् मेरे कहने का उस पर किंचित्मात्र भी असर नहीं हुआ, किन्तु अरे भाई! यदि वह मानता है तो अपने भाव से मानता है और यदि नहीं मानता है तो अपने भाव से वैसा करता है। किसी पर किसी का कोई असर होता ही नहीं है। निमित्त और उपादान दोनों स्वतंत्र पदार्थ हैं।

जीव को समझने के निमित्त अनन्त बार मिले, तथापि अपनी उपादान शक्ति से स्वयं नहीं समझा इसलिए संसार परिभ्रमण किया। इससे सिद्ध होता है कि निमित्त का कोई असर उपादान पर नहीं है।

यहाँ पर उपादान-निमित्त का संवाद चल रहा है। यहाँ तक ९ दोहों की व्याख्या की जा चुकी है। उपादान का अर्थ क्या है? जो अपने स्वभाव से काम करे, सो उपादान है और उस काम के समय साथ ही दूसरी वस्तु उपस्थित हो, वह निमित्त है। उपादान और निमित्त दोनों जैसे हैं, उनका वैसा ही निर्णय करना भी एक धर्म है। धर्म दूसरे भी हैं; सच्चे निर्णय पूर्वक राग-द्वेष को दूर करके स्थिरता करना, सो दूसरा चारित्र धर्म है। आत्मवस्तु में अनन्त धर्म हैं। धर्म अर्थात् स्वभाव। आत्मा का जो भाव संसार के विकार भाव से बचकर अविकारी स्वभाव को धारण करता है, वह आत्मा का धर्म है। इसलिए स्वभाव को समझना ही प्रथम धर्म है। जो जीव स्वभाव को नहीं समझता उसे जन्म-मरण के नाश का और मुक्तिदशा के प्रकट होने का लाभ नहीं मिलता। जो स्वाधीन स्वभाव को नहीं समझे - ऐसे अज्ञानी जीव यह मानते हैं कि यदि दूसरी वस्तु हो तो आत्मा का कल्याण हो, उनका निर्णय ही विपरीत है। उन्हें आत्मकल्याण के सच्चे उपाय की

खबर नहीं है।

जब आत्मकल्याण की भावनावाला जीव सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान के द्वारा आत्मा का निर्णय करता है; तब सच्चे देव, शास्त्र और गुरु की निमित्तरूप उपस्थिति होती है, किन्तु वे शास्त्र, गुरु आत्मा का ज्ञान नहीं करा देते। यदि स्वयं अपने ज्ञान से यथार्थ समझ सके तो समझा जा सकता है। बिना ज्ञान के छह-छह महीने तक उपवास किये, फिर भी सच्ची समझ नहीं पाई, इसलिए आत्मकल्याण नहीं हुआ।

प्रश्न - यह सब सूक्ष्म बातें हमारे किस काम की?

उत्तर - यह आत्मा की बात है, आत्मकल्याण करना हो तो यह जान लेना चाहिए कि कल्याण कहाँ होता है और कैसे होता है! अपना कल्याण अपने ही स्वभाव की शक्ति से होता है, पर से नहीं होता। यदि अपने स्वभाव को समझ ले तो सच्ची श्रद्धा का लाभ हो और विपरीत श्रद्धा से होनेवाली महा हानि दूर हो; यही सर्व प्रथम कल्याण है।

आत्मा का निर्णय सच्चे देव, शास्त्र, गुरु से प्रकट होता है। जब यह निमित्त ने कहा, तब उपादान ने उसका उत्तर दिया कि भाई! ये निमित्त तो अनन्त बार जीव को मिले, किन्तु स्वयं स्वभाव की महिमा को लाकर असंग आत्मतत्त्व का निर्णय नहीं किया; इसलिए संसार में परिभ्रमण करता रहा। तात्पर्य यह है कि कोई निमित्त आत्मा को लाभ नहीं करता।

हे भाई! यदि पर निमित्त से आत्मा के धर्म होता है - ऐसी परद्रव्याश्रित दृष्टि करोगे तो परद्रव्य तो अनन्त-अपार हैं, उसकी दृष्टि में कहीं भी अन्त नहीं आयेगा अर्थात् अनन्त पर पदार्थ की दृष्टि से छूटकर स्व-स्वभाव को देखने का अवसर कभी भी नहीं आयेगा, किन्तु मैं परद्रव्यों से भिन्न हूँ, मुझमें पर का प्रवेश नहीं है, मेरा कल्याण मुझमें ही है - ऐसी स्वाधीन द्रव्यदृष्टि करने पर अनन्त परद्रव्यों पर से दृष्टि छूट जाती है और स्वभावदृष्टि की दृढ़ता होती है तथा स्वभाव की ओर की दृढ़ता कल्याण का मूल है। परवस्तु तीन

काल और तीन लोक में हानि-लाभ करने के लिए समर्थ नहीं है। यदि अपने भाव में स्वयं उलटा रहे तो परिभ्रमण करता है और यदि सीधा हो तो मुक्त हो जाता है।

प्रश्न – पैसा, शरीर इत्यादि जो हमारे हैं, वे तो हमारा लाभ करते हैं या नहीं ?

उत्तर – मूल सिद्धान्त में ही अन्तर है, पैसा इत्यादि तुम्हारे हैं ही नहीं। पैसा और शरीर तो जड़ हैं, अचेतन हैं, पर हैं। आत्मा चैतन्य ज्ञानस्वरूप है। जड़ और चेतन दोनों वस्तुएँ त्रिकाल भिन्न ही हैं, कोई एक-दूसरे की हैं ही नहीं; पैसा इत्यादि आत्मा से भिन्न ही हैं, वे आत्मा के सहायक नहीं हो सकते, किन्तु सच्चा ज्ञान आत्मा का अपना होने से आत्मा की सहायता करता है। पैसा, शरीर इत्यादि कोई भी वस्तु आत्मा के धर्म का साधन तो है ही नहीं, साथ ही उससे आत्मा के पुण्य-पाप नहीं होते। 'पैसा मेरा है' – ऐसा जो ममत्वभाव है, सो अज्ञान है, पाप है और यदि उस ममत्व को कम करे तो उस भाव से पुण्य होता है। पैसे के कारण से पाप या पुण्य नहीं है। पैसा मेरा है और मैं उसे रक्खूँ – ऐसा जो ममत्वभाव है, सो महापाप है। वास्तव में यदि ममत्व को कम करे तो दान इत्यादि शुभ कार्यों में ही लक्ष्मी को व्यय करने का भाव हुए बिना न रहे। यहाँ पर तो निमित्त-उपादान के स्वरूप को समझने का अधिकार चल रहा है।

निमित्त की ओर से तर्क करनेवाला जीव शास्त्रों का ज्ञाता है। शास्त्रों की कुछ बातें उसने जानी हैं। इसलिए उन बातों को उपस्थित करके वह तर्क करता है। जिसने हिसाब लिखा हो, उसे बीच में कुछ पूछना होता है और वह प्रश्न कर सकता है, किन्तु जिसने अपनी स्लेट कोरी रखी हो और कुछ भी न लिखा हो तो वह क्या प्रश्न करेगा ? इसीप्रकार जिसने कुछ शास्त्राभ्यास किया हो अथवा शास्त्र-श्रवण करके कुछ बातों को समझा हो तो वह तर्क

उपस्थित करके प्रश्न कर सकता है, किन्तु जिसने कभी शास्त्र को खोला ही न हो और क्या चर्चा चल रही है – इसकी जिसे खबर ही न हो, वह क्या प्रश्न खड़ा कर सकेगा ?

यहाँ पर शिष्य शास्त्र पढ़कर प्रश्न करता है कि हे उपादान ! तुम कहते हो कि आत्मा का धर्म अपने उपादान से ही होता है, निमित्त कुछ नहीं करता; किन्तु भव्यजीवों को जो क्षायिक सम्यक्त्व होता है, वह तो केवली-श्रुतकेवली के सान्निध्य में ही होता है – यह शास्त्रों में कहा है, तब वहाँ निमित्त का जोर आया या नहीं ?

निमित्त इसप्रकार का तर्क उपस्थित करता है –

कै केवलि कै साधु के, निकट भव्य जो होय।

सो क्षायिक सम्यक् लहै, यह निमित्त बल जोय ॥१०॥

अर्थ : – निमित्त कहता है कि यदि केवली भगवान अथवा श्रुतकेवली मुनि के पास भव्यजीव हो तो ही क्षायिक सम्यक्त्व प्रकट होता है – यह निमित्त का बल देखो ! (यहाँ पर तर्क उपस्थित करते हुए निमित्त की भाषा लूली मालूम होती है, “आसन्न भव्यजीव कहते ही उपर्युक्त तर्क से शब्दों में यह बात स्पष्ट हो जाती है कि योग्यता उस जीव की अपनी ही है; इसलिए क्षायिक सम्यक्त्व को प्राप्त करता है – यह बात तर्क के शब्दों में आ जाती है।) क्षायिक सम्यक्त्व आत्मा की वह सम्यक् प्रतीति है कि जो केवलज्ञान को लेकर ही रहती है अर्थात् वह ऐसी आत्मप्रतीति है जो कभी पीछे नहीं रहती। श्रेणिक राजा पहले नरक से निकलकर भावी चौबीसी के प्रथम तीर्थकर होंगे, उन्हें ऐसा क्षायिक सम्यक्त्व प्राप्त है। क्षायिक सम्यग्दृष्टि को आत्मा की अति दृढ़ श्रद्धा होती है कि तीन लोक बदल जाए और इन्द्र उसे डिगाने के लिए उतर आये तो भी उसकी श्रद्धा नहीं बदलती। उसे अप्रतिहत श्रद्धा होती है, वह चौदह ब्रह्माण्ड से हिलाया नहीं हिलता और त्रिलोक में उथल-पुथल हो जाए तो मन में भय-संदेह नहीं लाता – ऐसा निश्चल सम्यक्त्व

तो क्षायिक सम्यक्त्व है।

निमित्त का वकील तर्क करता है कि श्रेणिकराजा, भरत चक्रवर्ती इत्यादि को केवली के निकट ही क्षायिक सम्यक्त्व हुआ था, देखो ! यह है कि निमित्त का जोर। शास्त्रों में लिखा है कि तीर्थंकर भगवान, केवली भगवान अथवा श्रुतकेवली (जिनशासन के बाह्य और अन्तरंग श्रुतज्ञान में परिपूर्ण मुनिराज) जहाँ विराजित हों वहाँ उनके चरण-कमल में ही क्षायिक सम्यक्त्व होता है; उनके अभाव में नहीं होता, इसलिए निमित्त ही बलवान है। अन्य निमित्त हो तो क्षायिक सम्यक्त्व नहीं होता। हे उपादान ! यदि तेरी ही शक्ति से काम होता है तो तीर्थंकरादि के अभाव में क्षायिक सम्यक्त्व क्यों नहीं होता ? निमित्त नहीं है, इसलिए नहीं होता अर्थात् निमित्त ही बलवान है। इसप्रकार निमित्त का तर्क है। वह तर्क क्यों कर गलत है, वह आगे के दोहे में बताया जायेगा।

तीर्थंकर केवली तथा श्रुतकेवली के समीप ही सब जीवों को क्षायिक सम्यक्त्व होता है - ऐसा एकान्त नहीं है। कई जीव स्वयं श्रुतकेवली होकर स्वतः क्षायिक सम्यक्त्व प्रकट करते हैं। क्षायिक सम्यक्त्व निमित्त के बल से हुआ है या उपादान के बल से ? इसे समझने में निमित्त पक्ष ने जो भूल की है, वह आगे बताई जायेगी।

प्रथम एक बार सत् निमित्त के पास से स्वयं योग्य होकर श्रवण किया हो, किन्तु उस समय सम्यक्त्व प्राप्त न किया हो तो भी बाद में सत् निमित्त का समीप न होने पर भी जीव स्वयं अन्तरंग से जागृत होकर उपशम-क्षयोपशम सम्यक्त्व प्राप्त कर सकता है; किन्तु क्षायिक सम्यक्त्व तो निमित्त की उपस्थिति में ही होता है। साक्षात् तीर्थंकर की सभा हो और तत्त्वों के गम्भीर न्याय की धारा प्रवाहित हो रही हो, उसे सुनने पर जीव को स्वभाव की परम महिमा प्राप्त होती है। अहा ! ऐसा परिपूर्ण ज्ञायकस्वरूपी भगवान में। एक विकल्प का अंश भी मेरा स्वरूप नहीं है, मैं स्वतंत्र स्वाधीन परिपूर्ण

हूँ। इसप्रकार अन्तर से निज आत्मस्वभाव की अप्रतिहत प्रतीति जागृत होने पर जीव को क्षायिक सम्यक्त्व प्राप्त होता है; वहाँ तीर्थंकर केवली अथवा श्रुतकेवली निमित्त हैं, इसलिए निमित्त यह कहता है कि आत्मा को क्षायिक सम्यक्त्व में निमित्त सहायक होना ही चाहिए, यह मेरा बल है।

इसके उत्तर में उपादान कहता है कि -

केवलि अरु मुनिराज के, पास रहें बहु लोय।

पै जाको सुलट्यो धनी, क्षायिक ताकों होय ॥११॥

उपादान कहता है कि केवली और श्रुतकेवली भगवान के पास बहुत से लोग रहते हैं, किन्तु जिसका धनी (आत्मा) सुलटा होता है, उसी को क्षायिक सम्यक्त्व होता है।

उपादान निमित्त से कहता है कि अरे सुन, सुन ! केवली भगवान और उस भव में मोक्ष जानेवाले श्रुतकेवलियों के निकट तो बहुत से लोग रहते हैं, बहुत से जीव साक्षात् तीर्थंकर के अति निकट जा आये, किन्तु उन सबको क्षायिक सम्यक्त्व नहीं हुआ। जिसका आत्मा सुलटा हुआ था, वह स्वयं अपनी शक्ति से क्षायिक सम्यक्त्व पा गया और जिसका आत्मा सुलटा नहीं था, वह क्षायिक सम्यक्त्व नहीं पा सका। इससे सिद्ध होता है कि उपादान से ही क्षायिक सम्यक्त्व होता है, निमित्त से नहीं।

जो जीव धर्म को समझते हैं, वे अपने पुरुषार्थ से समझते हैं। त्रिलोकीनाथ तीर्थंकर जिनके यहाँ जन्म लेते हैं, वे माता-पिता मोक्षाधिकारी होते ही हैं, तथापि वे अपने स्वतंत्र पुरुषार्थ से मोक्ष प्राप्त करते हैं। कुल के कारण अथवा तीर्थंकर भगवान के कारण मोक्ष नहीं पाते।

तीर्थंकर भगवान की सभा में तो बहुत से जीव अनेक बार गये, किन्तु जो स्वयं कुछ नहीं समझे, वे कोरे-कोरे वापिस आ गये। एक भी यथार्थ बात को अन्तरंग में नहीं बिठाया और जैसा गया था, वैसा ही अज्ञानता में वापिस आ गया। इतना ही नहीं, किन्तु कई जीव तो अपनी विपरीत बुद्धि

के कारण यह तर्क करते हैं कि जो यह कहते हैं क्या यही एक मार्ग है और जगत के समस्त मार्ग व्यर्थ हैं—गलत हैं ?

भगवान की सभा में उपशम—क्षयोपशम सम्यक्त्वी जीव होते हैं, वे भी यदि दृढ़ पुरुषार्थ के द्वारा स्वयं क्षायिक सम्यक्त्व करें, तब ही होता है और बहुत से स्वयं नहीं करते; इसलिए उन्हें नहीं होता। तात्पर्य यह है कि निमित्त का बल है ही नहीं। यदि निमित्त में कोई शक्ति होती तो जो भगवान के पास गये, उन्हें क्षायिक सम्यक्त्व क्यों नहीं हुआ ? समवशरण में जो जीव भगवान के पास जाते हैं, वे सभी समझ ही जाते हों, सो बात नहीं है; किन्तु जिसका धनी (आत्मा) समझकर सुलटा होता है, उसे ऐसी आत्मप्रतीति प्रकट होती है कि जो फिर कभी पीछे नहीं हटती।

अहो ! परम महिमावंत परिपूर्ण आत्मस्वभाव ! इस स्वभाव का अवलोकन करते—करते ही केवलज्ञान होता है - जो जीव सुलटा होकर ऐसी दृढ़ प्रतीति करता है, उसी के होता है; किन्तु जो भगवान की वाणी को सुनकर भी सुलटा नहीं होता, उसे सम्यक्त्व नहीं होता। इससे सिद्ध है कि निमित्त का कोई बल नहीं है। जिसके अपने पैरों में शक्ति नहीं है, वह दूसरे के आधार पर कैसे खड़ा रह सकता है ? इसीप्रकार अपनी आत्मा की शक्ति के बिना, यथार्थ समझ के बिना साक्षात् भगवान के पास जाकर भी अपने भीतर में से विशेष स्वच्छन्दी हुआ, इसलिए सच्चा ज्ञान नहीं हुआ। इसलिए भगवान के पास जाने से क्षायिक सम्यक्त्व नहीं होता, किन्तु वह उपादान की जागृति से होता है।

अब निमित्त प्रकारान्तर से कहता है -

हिंसादिक पापन किये, जीव नर्क में जाहिं।

जो निमित्त नहिं काम को, तो इम काहे कहाहिं ॥१२॥

अर्थ :- निमित्त कहता है कि यदि निमित्त कार्यकारी न हो तो फिर यह क्यों कहा जाता है कि हिंसादिक पाप करने से जीव नरक में जाता है

?

हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रहादि से जीव नरक में जाता है। इसमें निमित्त का ही बल है। हिंसा में पर जीव का, झूठ में भाषा का, परिग्रह में परवस्तु का, चोरी में रुपया—पैसा का और कुशील में शरीरादिरूप निमित्त की जरूरत पड़ती है या नहीं ? इससे स्पष्ट है कि निमित्त ही नरक में ले जाता है। परवस्तु के निमित्त से ही हिंसादि पाप होते हैं; केवल आत्मा से हिंसा चोरी आदि पाप कर्म नहीं हो सकते। इसलिए यदि निमित्त का बल न हो तो हिंसादि करनेवाले नरक में जाते हैं, यह क्यों कर बनेगा ? परवस्तु ही उनके नरक का कारण होती है; इसलिए वहाँ निमित्त का बल है या नहीं - इसप्रकार निमित्त ने तर्क उपस्थित किया।

उसका समाधान करता हुआ उपादान कहता है -

हिंसा में उपयोग जहाँ, रहे ब्रह्म के राच।

तेई नर्क में जात हैं, मुनि नहिं जाहिं कदाच ॥१३॥

अर्थ :- हिंसादि में जिसका उपयोग (चैतन्यपरिणाम) हो और जो आत्मा उसमें रचा—पचा रहे वही नर्क में जाता है। भावमुनि कदापि नरक में नहीं जाते।

पर जीव की हिंसा और जड़ का परिग्रह इत्यादि में जीव को यदि ममत्व रूप अशुभभाव होता है तो ही वह नरक में जाता है।

किसी परवस्तु के कारण से अथवा पर जीव मर गया - इस कारण से कोई जीव नरक में नहीं जाता; किन्तु जिन जीवों का उपयोग अशुभ परिणामों में लीन हो रहा है, वे ही नरक में जाते हैं। पर जीव के मरने से अथवा राजपाट के अनेक संयोग मिलने से जीव नरक में नहीं जाता, किन्तु मैंने राज किया, मैंने पर जीव को मारा, यह रुपया—पैसा मेरा है - इसप्रकार के ममत्व—परिणाम से ही जीव नरक में जाता है। भावमुनि कभी भी नरक में नहीं जाते। कभी मुनि के पैर के नीचे कोई जीव आ जाये और दबकर मर

जाये तो भी सच्चे मुनि नरक में नहीं जाते, क्योंकि उनके विपरीतभाव - हिंसक परिणाम नहीं हैं; विपरीत स्वभाववाला नरक में जाता है, किन्तु कोई निमित्तवाला नरक में नहीं जाता।

प्रश्न - आपने कहा कि निमित्तवाला नरक में नहीं जाता, तब बहुत-सा रुपया-पैसा इत्यादि परिग्रह रखने में कोई हानि तो नहीं है?

उत्तर - निमित्त दोष का कारण नहीं है, किन्तु अपना ममत्वभाव अवश्य ही दोष का कारण है। जो पैसा इत्यादि रखने का भाव हुआ, वह कहीं बिना ममता के होता होगा? ममता ही पापभाव है। बहुत रुपया-पैसा से अथवा पर जीव के मरने से आत्मा नरक में नहीं जाता, किन्तु पर जीव को मारने का हिंसकभाव और अधिक रुपया-पैसा रखने का तीव्र ममत्वभाव ही जीव को नरक में ले जाता है। किसी के पास एक ही रुपया हो, किन्तु उसके ममत्वभाव अधिक हो तो वह नरक में जाता है और दूसरों के पास करोड़ों रुपयों की सम्पत्ति हो, तथापि ममत्वभाव अल्प हो तो वह नरक में नहीं जाता अर्थात् निमित्त के संयोग पर आधार नहीं है, किन्तु उपादान के भाव पर आधार है; यदि गृहस्थ हिंसादिक तीव्रपाप-कषाय न करे तो नरक में नहीं जाता और अज्ञानी त्यागी भी यदि तीव्र कलुषित परिणाम करे तो वह नरक में जाता है।

क्षायिक सम्यग्दृष्टि धर्मात्मा चक्रवर्ती राजा हो और लड़ाई में हजारों मनुष्यों के संहार के बीच खड़ा हो तथा स्वयं भी बाण छोड़ रहा हो; तथापि यदि उसके अन्तरंग में यह प्रतीति है कि यह मेरा स्वरूप नहीं है, मैं पर जीव का कुछ भी करने में समर्थ नहीं हूँ, मेरी अस्थिरता के कारण मुझे रागवृत्ति आ जाती है, वह भी मेरा स्वरूप नहीं है - ऐसा भान होने से वह नरक में नहीं जाता; इसलिए स्पष्ट है कि पर जीव की हिंसा नरक का कारण नहीं है, किन्तु अन्तरंग का अशुभभाव ही नरक का कारण है।

निमित्त ने बारहवें दोहे में यह तर्क उपस्थित किया था कि निमित्त से

पाप होता है', किन्तु अब वह यह तर्क उपस्थित करता है कि 'निमित्त से पुण्य होता है और जीव सुखी होता है' यथा -

दया-दान पूजा किये, जीव सुखी जग होय।

जो निमित्त झूठो कह्यो, यह क्यों माने लोय ॥१४॥

अर्थ :- निमित्त कहता है कि दया, दान, पूजा करने से जीव जगत में सुखी होते हैं। यदि आपके कथनानुसार निमित्त झूठा हो तो लोग उसे क्या मानेंगे ?

पर जीव की दया, द्रव्यादि का दान और भगवान की पूजा इत्यादि से जीव के पुण्यबंध होता है। इसप्रकार दया में पर जीव का निमित्त, दान में द्रव्य का निमित्त और पूजा में भगवान का निमित्त है तथा इस पर निमित्त से जीव पुण्य को बाँधकर जगत में सुखी होता है। आप कहते हैं कि उपादान स्वतंत्र है और पुण्य से या परवस्तु से सुखी नहीं होता है, किन्तु यह तो प्रत्यक्ष है कि दया इत्यादि से पुण्य करे तो अच्छी सामग्री मिलती है और जगत में जीव सुखी होता है। यदि निमित्त से सुख न मिलता हो तो यह कैसे बने ? यह निमित्त पक्ष का तर्क है। इसमें तीन प्रकार से निमित्त का पक्ष स्थापित हुआ -

१. पर निमित्त से पुण्य होता है। २. पुण्य करने से बाह्य वस्तु मिलती है। ३. बाह्य वस्तु मिलने से जीव को सुख मिलता है। इसप्रकार समस्त जगत पुण्य के संयोग में अपने को सुखी मानता है, इसलिए निमित्त का ही बल है।

उपादान पक्ष ने निमित्त पक्ष के अभी तक के समस्त तर्कों को जिसप्रकार खण्डित किया है, उसीप्रकार इस तर्क का भी खण्डन करता हुआ कहता है कि -

दया, दान, पूजा भली, जगत माहिं सुखकार।

जहँ अनुभव को आचरण, तहँ यह बन्ध विचार ॥१५॥

अर्थ :- उपादान कहता है कि दया, दान, पूजा इत्यादि भले ही जगत में बाह्य सुविधा दें, किन्तु जहाँ अनुभव के आचरण पर विचार करते हैं, वहाँ यह सब (शुभभाव) बन्ध है (धर्म नहीं)।

पर जीव की दया में राग को कम करने से, दान में तृष्णा को कम करने से और पूजा भक्ति में शुभराग करने से जो पुण्यबन्ध होता है, वह जगत में संसार के विकारी सुख का कारण है; किन्तु वास्तव में तो वह दुःख ही है। सच्चे सुख के स्वरूप को जाननेवाले सम्यग्ज्ञानी उस पुण्य को और उसके फल को सुख नहीं मानते। उस पुण्यभाव से रहित अपने शुद्ध पवित्र आत्मा का अनुभव ही सच्चा सुख है, पुण्यभाव से तो आत्मा को बन्ध होता है; इसलिए वह दुःख ही है और उसका फल दुःख का ही निमित्त है। पुण्य तो आत्मा के गुण को रोकता है और जड़ का संयोग कराता है, उसमें आत्मा के गुण का लाभ नहीं होता। यदि यह यथार्थ समझ के द्वारा आत्मा को पहचानकर उसका अनुभव करे तो परमसुख और सच्चा लाभ हो, इसमें पुण्य और निमित्त (पुण्य का फल) इन दोनों से सुख होता है - यह बात उड़ा दी गई है। पुण्य के फल के रूप में बाह्य में जो कुछ संयोग मिलता है, उसे अज्ञानी जीव सुख मानता है, किन्तु बाह्य सामग्री से और जड़ में आत्मा का लाभ अथवा सुख किंचित्मात्र भी नहीं है।

निमित्त ने कहा था कि पुण्य से जीव सुखी होता है। यह उपादान कहता है कि किसी भी प्रकार का जो पुण्य परिणाम होता है, वह आत्मा को बांधता है, आत्मा के अविकारी धर्म को रोकता है। इसका यह अर्थ नहीं समझना चाहिए कि अशुभ से बचने के लिए शुभभाव न किये जायें, किन्तु यह समझना चाहिए कि वह पुण्य-परिणाम आत्मधर्म में - सुख में सहायक नहीं है। आत्मा की पहचान करने से ही धर्म होता है, किन्तु अधिकाधिक पुण्य करने से वह आत्मा के धर्म के लिए निमित्तरूप सुख

होगा - यह कदापि नहीं हो सकता। उपादान स्वरूप आत्मा का ही बल है, निमित्त का नहीं।

देखो तो इस बाल-बच्चोंवाले गृहस्थ ने संवत् १७५० में उपादान-निमित्त के स्वरूप को कितना स्पष्ट किया था। सभी पहलुओं से तर्क उपस्थित किये हैं। जैसे किसी का किसी के साथ कोई झगड़ा पड़ा हो तो वह उसके विरोध में तर्क करके दावा दायर करता है और नीचे की अदालत में असफल होने पर हाईकोर्ट में जाता है और वहाँ पर भी असफल होने पर प्रीवी कौंसिल में अपील करता है और इसप्रकार तमाम शक्य प्रयत्न करता है; उसीप्रकार यहाँ पर निमित्त भी नये-नये तर्क उपस्थित करता है, उलट-पुलटकर जितनी बन सकती हैं, वे सब दलीलें रखता है, किन्तु उसकी एक भी दलील उपादान तर्क के सामने नहीं टिक सकती। उपादान की तो एक ही बात है कि आत्मा अपने उपादान से स्वतंत्र है; आत्मा की सच्ची श्रद्धा, ज्ञान और स्थिरता ही कल्याण का उपाय है, दूसरा कोई उपाय नहीं है। अन्त में निमित्त और उपादान दोनों की युक्तियों को भली-भाँति जानकर सम्यग्ज्ञानरूपी न्यायाधीश अपना यथार्थ निर्णय देगा, जिसमें उपादान की जीत और निमित्त की हार होगी।

अभी तक निमित्त ने अपने को उपादान के सामने बलवान सिद्ध करने के लिए अनेकप्रकार के तर्क उपस्थित किये और उपादान ने न्याय के बल से उसके सभी तर्कों का खण्डन कर दिया है।

अब निमित्त नये प्रकार का तर्क उपस्थित करता है -

**यह तो बात प्रसिद्ध है, सोच देख उर माहिं।
नर देही के निमित्त बिन, जिय क्यों मुक्ति न जाहिं ॥१६॥**

अर्थ :- निमित्त कहता है कि यह बात तो प्रसिद्ध है कि नरदेह के निमित्त बिना जीव मुक्ति को प्राप्त नहीं होता; इसलिए हे उपादान ! तू इस सम्बन्ध में अपने अन्तरंग में विचार कर देख।

निमित्त – दूसरी सब बातें तो ठीक हैं, किन्तु मुक्ति में नरदेह का निमित्त है या नहीं ? मनुष्य शरीर लगेठा तो है ही, यह लगेठा तो होना ही चाहिए।

उपादान – अकेले के लिए लगेठा कौन ? नागा बाबा को लगेठा का क्या काम ? नंगे को कौन लूटनेवाला है ? नागा बाबा को लगेठा नहीं होता, इसीप्रकार आत्मा समस्त परद्रव्य के परिग्रह से रहित अकेला स्वाधीन है। मोक्षमार्ग में उसे कोई लूटनेवाला नहीं है। आत्मा अपनी शक्ति से परिपूर्ण है, उसे किसी अन्य लगेठा की आवश्यकता नहीं है। मनुष्य शरीर जड़ है, वह मुक्ति का लगेठा नहीं हो सकता।

मनुष्यभव से ही मुक्ति होती है; अन्य तीन गतियों (देव, तिर्यच, नरक) से मुक्ति नहीं होती, इसलिए निमित्त ऐसा तर्क करता है, जैसे मानो – मनुष्य-देह आत्मा को मुक्त करा देता है। वह कहता है कि सारी दुनिया का अभिप्राय लो तो इस पक्ष में अधिक मत मिलेंगे कि मनुष्य-देह के बिना मुक्ति नहीं होती; इसलिए मनुष्य-देह से ही मुक्ति होती है और यह बात तो जग प्रसिद्ध है, इसलिए हे उपादान ! इसे तू अपने अन्तरंग में विचार देख। क्या कहीं देव अथवा नरकादि भव से मुक्ति होती है ? कदापि नहीं। इसलिए मनुष्य शरीर ही मुक्ति में सहायक है। भाई ! आत्मा को मुक्त होने में किसी न किसी वस्तु की सहायता की आवश्यकता पड़ती ही है। सौ हलवाले को भी एक हलवाले की किसी समय आवश्यकता हो जाती है, इसलिए आत्मा को मुक्ति के लिए निश्चयतः इस मानव देह की सहायता आवश्यक है।

इसप्रकार बेचारा निमित्त अपना सारा बल एकत्रित करके तर्क करता है किन्तु उपादान का एक जवाब उसे खण्डित कर देता है। उपादान कहता है कि -

देह पींजरा जीव को, रोकै शिवपुर जात।

उपादान की शक्ति सौं, मुक्ति होत रे भ्रात ॥१७॥

अर्थ :- उपादान-निमित्त को कहता है कि हे भाई ! देहरूपी पिंजरा तो जीव को शिवपुर (मोक्ष) जाने से रोकता है, किन्तु उपादान की शक्ति से मोक्ष होता है।

नोट – यहाँ पर जो यह कहा है कि देहरूपी पिंजरा जीव को मोक्ष जाने से रोकता है, सो यह व्यवहार कथन है। जीव शरीर पर लक्ष्य करके अपनेपन की ममत्व की पकड़ से स्वयं विकार में रुक जाता है, तब शरीर का पिंजड़ा जीव को रोकता है – यह उपचार से कथन है।

हे निमित्त ! तू कहता है कि मनुष्य-देह जीव को मोक्ष के लिए सहायक है, किन्तु भाई ! देह का लक्ष्य तो जीव को मोक्ष जाने से रोकता है; क्योंकि शरीर के लक्ष्य से तो राग ही होता है और राग जीव की मुक्ति को रोकता है; इसलिए देहरूपी पिंजड़ा जीव को शिवपुर जाने से रोकने में निमित्त है।

ज्ञानी मुनि (साधु) पुरुष सातवें-छठे गुणस्थान में आत्मानुभव में झूलता हो, तब वहाँ छठे गुणस्थान पर संयम के हेतु से शरीर के निर्वाह के लिए आहार की शुभ इच्छा होती है, सो वह भी मुनि के केवलज्ञान और मोक्ष को रोकती है; इसलिए हे निमित्त ! शरीर आत्मा की मुक्ति में सहायक होता है, तेरी यह बात बिलकुल गलत है।

और फिर मनुष्य शरीर कहीं पहली बार नहीं मिला है। ऐसे शरीर तो अनन्त बार प्राप्त हो चुके हैं, तथापि जीव मुक्त क्यों नहीं हुआ ? स्वयं अपने स्वाधीन आनन्द स्वरूप को नहीं जाना तथा जैसा सर्वज्ञ भगवान ने कहा है उसे नहीं समझा और पराश्रय में ही अटका रहा; इसलिए मुक्ति नहीं हुई। केवलज्ञान और मुक्ति आत्मा के स्वाश्रयभाव से उत्पन्न हुई अवस्था है, वे शरीर की हड्डियों में से अथवा इन्द्रियों से उत्पन्न नहीं होते।

ज्ञानी और अज्ञानी की मूल दृष्टि में अन्तर है। अज्ञानी की दृष्टि आत्मस्वभाव पर नहीं है अर्थात् वह स्वाधीन शक्ति को (उपादान को) नहीं जानता, इसलिए वह पराश्रित दृष्टि के कारण संयोग में निमित्त को ही देखता है और इसी की शक्ति को मानता है। ज्ञानी की दृष्टि अपने आत्मस्वभाव पर है, उसे उपादान की स्वाधीन शक्ति की खबर है, इसलिए वह जानता है कि जहाँ अपना स्वभाव साधन होता है, वहाँ निमित्त अवश्य अनुकूल होता है, किन्तु निमित्त पर ज्ञानी की दृष्टि नहीं है, जोर नहीं है। मानव-देह धर्म का कारण होती तो मनुष्य-देह अनन्त बार मिल चुकी है, तब जीव कभी का धर्म को पा गया होता; किन्तु यह जीव इससे पहले धर्म को कभी नहीं प्राप्त हुआ, क्योंकि यदि उसने पहले धर्म को पाया होता तो अभी इसप्रकार संसार में न होता, इसलिए मनुष्य-शरीर जीव को धर्म प्राप्त करने में किंचित् मात्र भी सहायक नहीं है। स्वयं अपने को सहायक हो सकता है।

प्रश्न – हमें तो धर्म करना है, उसमें इतना अधिक समझने का क्या काम है और फिर इतना सब समझकर हमें क्या करना है ?

उत्तर – हे भाई ! स्व कौन और पर कौन है – इसका निर्णय किए बिना धर्म कहाँ करेगा ? उपादान और निमित्त दोनों स्वतंत्र भिन्न-भिन्न वस्तुएँ हैं। यह समझकर पर वस्तु आत्मा के लिए हानि-लाभ का कारण है – यह मिथ्या मान्यता दूर कर देनी चाहिए। आत्मा ही स्वयं अपना हानि-लाभ करता है – ऐसी स्वाधीन दृष्टि होने पर असंयोगी आत्मस्वभाव की सच्ची पहचान होती है, वही धर्म है और वही आत्मकल्याण है। इस बात को समझे बिना जीव चाहे जो करे, किन्तु उसका कल्याण नहीं होता।

अब निमित्त यह तर्क उपस्थित करता है कि निमित्त के बिना जीव का मोक्ष रुका हुआ है –

उपादान सब जीव पै, रोकनहारौ कौन।

जाते क्यों नहीं मुक्ति में, बिन निमित्त के हौन ॥१८॥

अर्थ :- निमित्त कहता है कि उपादान तो सब जीवों के हैं, तब फिर उन्हें रोकनेवाला कौन है ? वे मोक्ष में क्यों नहीं चले जाते ? स्पष्ट है कि निमित्त के न होने से ऐसा नहीं होता।

“निमित्त कहता है कि हे उपादान ! यदि उपादान की शक्ति से ही सब काम होते हों तो उपादान तो सभी जीवों में विद्यमान है। सभी जीवों में सिद्ध होने की शक्ति मौजूद है, तब फिर सभी जीव मुक्त क्यों नहीं हो जाते; उन्हें मोक्ष में जाने से कौन रोकता है ? सच तो यह है कि जीवों को अच्छा निमित्त नहीं मिलता; इसलिए वे मोक्ष नहीं जा पाते। मनुष्यभव, आर्यक्षेत्र, उत्तम कुल, पंचेन्द्रियों की पूर्णता, निरोग शरीर और साक्षात् भगवान की उपस्थिति – यह सब सानुकूल निमित्त मिल जाये तो जीव को धर्म प्राप्त हो। आँखों से भगवान के दर्शन और शास्त्रों का पठन होता है; इसलिए आँख धर्म में सहायक हुई न ! और कान हैं तो उपदेश सुना जाता है। यदि कान न हों तो क्या उपदेश सुन सकेंगे ? तात्पर्य यह है कि कान भी धर्म में सहायक हैं। इसप्रकार यदि इन्द्रियादिक की सामग्री ठीक हो तो जीव की मुक्ति हो। एकेन्द्रिय जीव के भी उपादान तो है, तब फिर वह मोक्ष में क्यों नहीं जाता ? उसके इन्द्रियादिक सामग्री ठीक नहीं है; इसलिए मुक्ति को प्राप्त नहीं कर सकता। इससे सिद्ध हुआ कि निमित्त ही बलवान है।

निमित्त का तर्क तो देखो ! मात्र संयोग के तरफ की बात ली है, कहीं भी आत्मा का तो कार्य किया ही नहीं है, किन्तु अब उपादान उसका उत्तर देता हुआ मात्र आत्मा की तरफ से कहता है कि भले ही सब कुछ हो, किन्तु आत्मा स्वयं जागृत न हो तो उसकी मुक्ति नहीं होती –

उपादान सु अनादि को, उलट रह्यो जग माहिं।

सुलटा ही सूधे चलें, सिद्धलोक को जाहिं ॥१९॥

अर्थ :- उपादान कहता है कि जगत में अनादिकाल से उपादान उलटा हो रहा है, उसके सुलटे होते सच्चा ज्ञान और सच्चा चारित्र प्रकट होता है और उससे वह सिद्धलोक को जाता है - मोक्ष पाता है।

अरे निमित्त ! यह सच है कि उपादान तो सभी आत्माओं में अनादिकाल से है; परन्तु वह उपादान अपने विपरीत भाव से संसार में अटक रहा है, किसी निमित्त ने उसे नहीं रोका। निगोददशा में जीव धर्म को नहीं पा सकता। वहाँ भी वह अपने ही विपरीत भाव के कारण ज्ञानशक्ति को हार बैठा है। यह बात नहीं है कि 'इन्द्रियाँ' नहीं हैं इसलिए ज्ञान नहीं है, किन्तु 'अपने में ही ज्ञानशक्ति का हनन कर चुका है, इसलिए निमित्त भी नहीं है' - इसप्रकार उपादान की ओर से कहा गया है। अच्छे कान और अच्छी आँखें मिलने से क्या होता है ? कानों में उपदेश के शब्द आने पर भी यदि उपादान जागृत नहीं है तो धर्म नहीं समझा जा सकता। इसीप्रकार अच्छी आँखें हों और शास्त्रों के शब्द भलीभाँति पढ़े जायें, किन्तु यदि उपादान अपनी ज्ञानशक्ति न समझे तो उसके धर्म नहीं होता। आँखों से और शास्त्र से यदि ज्ञान होता हो तो बड़ी-बड़ी आँखोंवाले भैंसे के सामने पोथा रखकर तो देखिए, इतना अच्छा निमित्त मिलने पर भी वह समझता क्यों नहीं ? सच तो यह है कि उपादान में ही शक्ति नहीं है, इसलिए नहीं समझता! कर्म इत्यादि का किसी का जोर आत्मा पर नहीं है। अनादिकाल से उपादान के होने पर भी आत्मा स्वयं अज्ञान-दशा में अपने विपरीत पुरुषार्थ से अटक रहा है। जब वह आत्मप्रतीति करके सीधा होता है, तब वह मुक्ति प्राप्त करता है। निमित्त के अभाव से मुक्ति का अभाव नहीं है, किन्तु उपादान की जागृति के अभाव से मुक्ति का अभाव है।

निमित्त कहता है कि एक काम में बहुतों की आवश्यकता होती है।

उपादान कहता है कि भले ही यह सब कुछ हो, किन्तु एक उपादान न हो तो कोई भी कार्य नहीं हो सकता।

निमित्त - मात्र आटे से रोटी बन सकती है ? चकला, बेलन, तवा, अग्नि और बनानेवाला - ये सब हों तो रोटी बनती है; किन्तु यदि इनकी सहाय न हो तो वह अकेला आटा पड़ा-पड़ा क्या करेगा ? क्या मात्र आटे से रोटी बन जायेगी ? कदापि नहीं। तात्पर्य यह है कि निमित्त बलवान है, उसकी सहायता अनिवार्य है।

उपादान - चकला, बेलन, तवा, अग्नि और बनानेवाला इत्यादि सब मौजूद हों, किन्तु यदि आटे की जगह रेत हो तो क्या रोटी बन जायेगी ? कदापि नहीं; क्योंकि उस उपादान में उसप्रकार की शक्ति नहीं है। एकमात्र आटा न होने से रोटी नहीं बनती और आटे में रोटी के रूप में परिणत होने की जिस समय योग्यतारूप उपादानशक्ति है, उस समय वहाँ अनुकूल निमित्त उपस्थित होते ही हैं, किन्तु रोटी स्वयं आटे में से ही होती है, कार्य तो मात्र उपादान से ही होता है। आत्मा में मात्र पुरुषार्थ से ही कार्य होता है। मनुष्य भव, आर्य क्षेत्र, उत्तम कुल, पंचेन्द्रियों की पूर्णता, निरोग शरीर और साक्षात् भगवान की उपस्थिति इत्यादि किसी से भी जीव को लाभ नहीं होता, ये सब निमित्त तो जीव को अनन्त बार मिल चुके, तथापि उपादान स्वयं सुलटा नहीं हुआ; इसलिए किंचित् मात्र भी लाभ नहीं हुआ। यदि स्वयं सुलटा पुरुषार्थ करे तो आत्मा की परमात्मदशा स्वयं अपने में से प्रकट करता है; उसमें उसके लिए कोई निमित्त सहायक नहीं हो सकते। इसमें कितना पुरुषार्थ आया ! उपादान ने एक आत्मस्वभाव को छोड़कर जगत की समस्त पर वस्तुओं की दृष्टि को अपंग बना दिया है। मुझे अपने आत्मा के अतिरिक्त विश्व की किसी भी वस्तु से हानि या लाभ नहीं है, कोई भी वस्तु मुझे राग नहीं कराती, मेरे स्वभाव में राग है ही नहीं - ऐसी श्रद्धा होते ही दृष्टि में न तो राग रहता है

और न पर का अथवा राग का आधार ही रहता है। हाँ, आधार स्वभाव का रह गया, इसलिए राग निराधार-अपंग हो गया। अल्पकाल में ही वह नष्ट हो जायेगा और वीतरागता प्रकट हो जायेगी। ऐसा अपूर्व पुरुषार्थ इस सच्ची समझ में आता है।

आँख, कान इत्यादि किसी जीव के अच्छे होने पर भी अज्ञान में तीव्र राग करके कोई जीव सातवें नरक में जाता है; तब वहाँ आँख, कान क्या कर सकते हैं? श्री गजकुमार मुनि के आँख, कान जल गये थे, तथापि भीतर उपादान के जाग्रत हो उठने से उन्होंने अपनी पर्याय में विशेष शुद्धि की प्राप्ति कर ली। इसमें निमित्त ने क्या किया? एक द्रव्य दूसरे द्रव्य की अवस्था को रोके या मदद करे यह बात सत्य के जगत में (अनन्त ज्ञानियों के ज्ञान में और वस्तु के स्वभाव में) नहीं है। असत्य जगत (अनन्त अज्ञानी) वैसा मानता है, इसलिए वह संसार में दुःखी होकर परिभ्रमण करता है।)

जीव एकेन्द्रिय से सीधा मनुष्य हो सकता है, सो कैसे? एकेन्द्रिय दशा में तो स्पर्शनेन्द्रिय के सिवाय कोई इन्द्रिय अथवा मन की सामग्री नहीं है, तथापि आत्मा में वीर्यगुण है। उस वीर्य गुण के बल पर भीतर शुभभाव करता है, जिससे वह मनुष्य होता है; कर्म का बल कम होने से शुभभाव हुआ - यह बात गलत है। परवस्तु से कोई पुण्य-पाप होता ही नहीं है। जीव स्वयं ही मन्द विपरीत वीर्य से शुभाशुभ भाव करता है। यदि उपादान स्वयं सुलटा होकर समझे तो स्वयं मुक्ति को प्राप्त होता है, विपरीत होने पर स्वयं ही फंसा रहता है, कोई दूसरा उसे नहीं रोकता।

जब स्वतंत्र उपादान जागृत होता है, तब निमित्त अनुकूल ही होता है। स्वभाव की प्रतीतिपूर्वक पूर्णता का पुरुषार्थ करते हुए साधकदशा में राग के कारण उच्च पुण्य का बंध हो जाये और उस पुण्य के फल में बाहर धर्म की पूर्णता के निमित्त मिलें, परन्तु जागृत हुआ साधक जीव उस पुण्य

के आश्रय में न रुककर स्वभाव में आगे बढ़ता हुआ पुरुषार्थ की पूर्णता करके मोक्ष को प्राप्त करता है। उपादान मोक्ष प्राप्त करता है, तब बाह्य निमित्त ज्यों के त्यों पड़े रहे जाते हैं, वे उपादान के साथ कहीं नहीं जाते। इसप्रकार पुरुषार्थ की पूर्णता करके मोक्ष होता है।

जीव अनादिकाल से विपरीत समझा है; वह छोटे देव-शास्त्र-गुरु के कारण नहीं, किन्तु अपने असमझरूप भाव के कारण ही उलटा समझकर परिभ्रमण कर रहा है। इसीप्रकार जीव यथार्थ समझ स्वयं ही करता है। कान से, आँख से अथवा देव-शास्त्र-गुरु से जीव के सच्ची समझ नहीं होती। यदि कान इत्यादि से ज्ञान हो तो जिसे वे निमित्त मिलते हैं, उन सबको एकसाथ ज्ञान हो जाना चाहिए, किन्तु ऐसा होता नहीं है; इसलिए मोक्ष और संसार, ज्ञान और अज्ञान अथवा सुख और दुःख - यह सब उपादान से ही होता है।

- इसप्रकार जीव को लाभ-हानि में किसी भी पर का किंचित् मात्र कारण नहीं है। यों दृढ़तापूर्वक सिद्ध करके निमित्त का “कुछ प्रभाव पड़ता है” - इस मिथ्या मान्यतारूप अज्ञान को सम्पूर्ण रीति से समाप्त कर दिया है।

अब निमित्त नया तर्क उपस्थित करता है -

कहूँ अनादि बिन निमित्त ही, उलट रहौ उपयोग।

ऐसी बात न संभवै, उपादान तुम जोग ॥२०॥

अर्थ :- निमित्त कहता है कि क्या अनादि से बिना निमित्त के ही उपयोग (ज्ञान का व्यापार) उलटा हो रहा है। हे उपादान! तुम्हारे लिए ऐसी बात तो सम्भव नहीं है।

उपादान ने १९ वें दोहे में कहा था कि उपादान अनादि से उलटा हो रहा है, उसे लक्ष्य में लेकर निमित्त यह तर्क करता है कि हे उपादान! तुझमें अनादि से जो विकार भाव हो रहा है, क्या वह बिना निमित्त ही होता है।

यदि पर निमित्त के बिना मात्र आत्मा से ही विकार होता हो तो वह आत्मा का स्वभाव ही हो जायेगा और तब सिद्ध भगवान के भी विकार होना चाहिए। परन्तु विकारी भाव अन्य निमित्त के बिना होता नहीं होता; क्योंकि वह आत्मा का स्वभाव नहीं है। यदि बिना निमित्त के होने लगे तो विकार स्वभाव हो जाये किन्तु विकार में निमित्त तो होता ही है; इसलिए निमित्त का जोर हुआ या नहीं।

विपरीतभाव अकेले स्वभाव में से आया या उसमें कोई निमित्त था ? क्या अकेली चूड़ी बज सकती है? अकेली चूड़ी नहीं बज सकती; किन्तु साथ में दूसरी चूड़ी के होने पर ही बज सकती है। यदि सामने चन्द्रमा न हो तो आँख में अंगुली लगाने से दो चन्द्रमा न दिखाई दें, क्योंकि सामने दूसरी चीज है, इसीलिए विकार होता है। इसीप्रकार आत्मा के विकार में दूसरी वस्तु की आवश्यकता होती है। उपादान और निमित्त दोनों के एकत्रित होने पर विकार होता है। आत्मा जब विकार करता है, तब वह पर के लक्ष्य से करता है या आत्मा के लक्ष्य से! मात्र आत्मा के लक्ष्य से विकार होने की योग्यता ही नहीं है, इसलिए विकार होने में मैं (निमित्त) भी कुछ करता हूँ।

ध्यान रखिये ये तो सब निमित्त के तर्क हैं। ऊपर से बलवान लगता तर्क भीतर से बिलकुल ढीला है, उसकी तो नींव कमजोर है। उपादान के सामने यह एक भी तर्क नहीं टिक सकता।

उपादान का उत्तर -

उपादान कहे रे निमित्त, हम पै कही न जाय।

ऐसे ही जिन केवली, देखे त्रिभुवन राय ॥२०॥

अर्थ :- उपादान कहता है कि हे निमित्त ! मुझसे नहीं कहा जा सकता। जिनेन्द्र केवली भगवान त्रिभुवनराय ने ऐसा ही देखा है।

नोट - यहाँ पर उपादान के कहने का आशय यह है कि जब जीव

विकार करता है, तब उसका लक्ष्य दूसरी वस्तु पर होता है, उस दूसरी वस्तु को निमित्त कहा जाता है; किन्तु जिनेन्द्र भगवान देखते हैं कि निमित्त के असर के बिना ही उपादान का उपयोग अपने ही कारण से विपरीत हुआ है; इसलिए तू जैसा कहता है, वैसा मुझसे नहीं कहा जा सकता।

अरे निमित्त ! आत्मा अपने विपरीत भाव से जब राग-द्वेष करता है, तब दूसरी वस्तु जो उपस्थित है, उसका इन्कार कैसे किया जा सकता है ? जीव विकार करता है, तब दूसरी वस्तु निमित्तरूप में उपस्थित होती है - यह ठीक है, किन्तु उस निमित्त को लेकर आत्मा विकार करता है - यह बात ठीक नहीं है। भले ही विकार आत्मा के स्वभाव में से नहीं आता, किन्तु विकार की उत्पत्ति तो आत्मा की ही अवस्था में होती है, कहीं निमित्त की अवस्था में से नहीं होती। दो चूड़ियाँ एकत्रित होकर बजती हैं, किन्तु वे एक-दूसरे के कारण नहीं बजती; लेकिन प्रत्येक चूड़ी अपनी ही शक्ति से बजती है। दो लकड़ियाँ एकत्रित होती हैं तो वे चूड़ियों की तरह नहीं बजती क्योंकि उनमें उस तरह की उपादान शक्ति नहीं है। कभी दो चूड़ियाँ टक्कर लगने से टूट भी जाती हैं, तब वे वैसी क्यों नहीं बजती ? उनमें वैसी आवाज होने की उपादान शक्ति नहीं है, किन्तु टूटनेरूप योग्यता है; इसलिए वैसा होता है। दूसरे चन्द्रमा है, इसलिए आँख को अंगुली से दबाने पर दो चन्द्रमा दिखाई देते हैं - यह बात भी ठीक नहीं है। यदि चन्द्रमा के कारण ऐसा हो तो जो चन्द्रमा को देखते हैं, उन सबको दो चन्द्रमा दिखाई देने चाहिए, किन्तु ऐसा नहीं होता; क्योंकि इसमें चन्द्रमा का कारण नहीं है। एक देखनेवाले को चन्द्रमा एक ही स्पष्ट दिखाई देता है और दूसरे देखनेवाले को दो चन्द्रमा दिखाई देते हैं। यहाँ देखनेवाले की दृष्टि में कुछ अन्तर है। जो देखनेवाला अपनी आँख में अंगुली गड़ाकर देखता है, उसे दो चन्द्रमा दिखाई देते हैं, दूसरे को नहीं दिखाई देते। उससे

सिद्ध हुआ कि निमित्त के अनुसार कार्य नहीं होता, किन्तु उपादान कारण की शक्ति के अनुसार कार्य होता है। इसीप्रकार जब जीव स्वरूप को भूलकर विपरीत दृष्टि से विकार करता है, तब वह उसे स्वयं ही करता है; कोई पर नहीं कराता। सामने निमित्त तो एक का एक ही है, तथापि उपादान की योग्यता के कारण परिणाम में अंतर होता है।

इसका दृष्टान्त इसप्रकार है - कोई एक सुन्दर मरी हुई वेश्या मार्ग में पड़ी हुई थी; उसे साधु, चोर, विषयासक्त पुरुष और कुत्ते ने देखा। उनमें से साधु ने विचार किया कि अरे! ऐसा मनुष्यभव पाकर भी आत्मा को पहचाने बिना मर गई! चोर ने विचार किया कि यदि कोई यहाँ न हो तो इसके शरीर पर से गहने उतार लूँ, विषयासक्त पुरुष ने यह विचार उत्पन्न किया कि यदि यह जीवित होती तो इसके साथ भोग भोगता और कुत्ते ने ऐसा विचार किया कि यदि यहाँ से सब लोग चले जायें तो मैं इसके शरीर के माँस को खाऊँ।

देखिये, अब यहाँ पर सबके लिए एक-सा ही निमित्त है, तथापि प्रत्येक की उपादान की स्वतंत्रता के कारण विचार में कितना अन्तर हो गया! यदि निमित्त का असर होता हो तो सबके विचार एक समान होने चाहिए, किन्तु ऐसा नहीं हुआ। इससे सिद्ध है कि उपादान की स्वाधीनता से ही कार्य होता है। जीव स्वयं ही पापराग-पुण्यराग या पुण्य-पाप रहित शुद्ध वीतराग भावों में से जैसा भाव करना चाहे, वैसा भाव कर सकता है।

यह तो समझी जा सकने योग्य धर्म की बात है। प्रथम दशा में समझने के लिए साधारण बात है। सम्यग्दर्शन अर्थात् स्वतंत्र परिपूर्ण आत्मस्वभाव की पहचान को प्रकट करने के पूर्व वस्तु का यथार्थ निर्णय करने के लिए यह प्रथम भूमिका है। कल्याण के लिए यह अपूर्व समझ है। मात्र शब्दों की बात नहीं है, किन्तु यह तो केवलज्ञान की प्राप्ति की बारहखड़ी की प्रथम भूमि

मात्र है। इसलिए इसे रुचिपूर्वक ठीक समझना चाहिए।

अज्ञानी कहता है - कर्म के निमित्त के बिना आत्मा के विकार नहीं होता, इसलिए कर्म ही विकार करता है। ज्ञानी कहता है - आत्मा स्वयं जितना विकार करता है, तब उतना अंश कर्म को निमित्त कहा जाता है, लेकिन वह कर्म आत्मा को विकार नहीं कराता। कोई हजारों गालियाँ दे तो वह क्रोध का कारण नहीं है, किन्तु जीव यदि क्षमा को छोड़कर क्रोध करे तो गाली को क्रोध का निमित्त कहा जाता है। जीव यदि अपने भाव में क्षमा को सुरक्षित रखे तो हजारों या करोड़ों गालियों के होने पर भी उन्हें निमित्त नहीं कहा जा सकता। उपादान को भावानुसार सामने की वस्तु में निमित्तपने का आरोप आता है, किन्तु सामने की वस्तु के कारण उपादान का भाव हो - यह कदापि नहीं होता। उपादान जब स्वाधीनता पूर्वक अपना कार्य करता है, तब दूसरी वस्तु मात्र निमित्तरूप उपस्थित होती है - ऐसा सर्वज्ञदेव ने देखा है, तब हे निमित्त! मैं इससे इन्कार कैसे कर सकता हूँ!

यहाँ उपादान यह कहना चाहता है कि जगत की दूसरी वस्तुएँ उपस्थित हैं, उन्हें अपने ज्ञान में जानता तो हूँ। दूसरी वस्तु को जानने में हर्ज नहीं है, किन्तु दूसरी वस्तु मुझमें कुछ कर सकती है - यह बात मुझे मान्य नहीं है। जगत में अनन्त परद्रव्य हैं। वे सब सदा स्वतंत्र भिन्न-भिन्न हैं, यदि यों न माने तो ज्ञान असत् है और यदि यह मानें कि एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का कुछ कर सकता है तो भी ज्ञान असत् ही है। जीव तीव्र राग-द्वेष करता है और उसके निमित्त से जो कर्म बँधते हैं, उन कर्मों का जब उदय आता है, तब जीव को तीव्र राग-द्वेष करना ही होता है - यह बात बिलकुल गलत है और जीव की स्वाधीनता की हत्या करनेवाली है। जब जीव राग-द्वेष करता है, तब कर्म का निमित्त तो होता है, किन्तु कर्म जीव के राग-द्वेष नहीं कराते। जीव द्रव्य अथवा पुद्गल द्रव्य - दोनों अपनी पर्याय में

स्वतंत्र हैं और अपनी-अपनी अविकारी अथवा विकारी अवस्था को स्वयं ही स्वतंत्रतया करते हैं। कोई एक दूसरे का कर्ता नहीं है, इसप्रकार स्वतंत्र वस्तुस्वभाव की पहचान करना सो यही प्रथम धर्म है।

आत्मा के गुण के लिए परवस्तु की सहायता की आवश्यकता है, पर वस्तु आत्मा के गुण या दोष उत्पन्न करती है - यह मान्यता ठीक नहीं है। यह बात इस संवाद में सिद्ध की गई है। यदि परवस्तु आत्मा में दोष उत्पन्न करती है तो परवस्तु तो हमेशा रहती है; इसलिए दोष भी स्थायी हो जायेंगे और वे कभी दूर नहीं हो सकेंगे और यदि गुण के लिए आत्मा को परवस्तु की आवश्यकता हो तो गुण पराधीन हो जायेंगे; परन्तु गुण भी स्वाधीन स्वभाव है, इसलिए आत्मा के गुण-दोषों को परवस्तुएँ उत्पन्न नहीं कर सकतीं। जब जीव स्वयं अपना कार्य करता है तब वह निश्चय (उपादान) है और अन्य वस्तु की उपस्थिति व्यवहार (निमित्त) है। ये दोनों हैं अवश्य, किन्तु अन्य वस्तु उसमें गुण-दोष उत्पन्न करने के लिए समर्थ नहीं है।

पैसा हो तो पुण्य उत्पन्न हो और शरीर की इच्छा हो तो धर्म हो - ये दोनों मान्यताएँ बिलकुल मिथ्या हैं। इसीप्रकार देव-गुरु-शास्त्र की उपस्थिति जीव को धर्म प्राप्त कराती है - यह बात भी मिथ्या है। यदि जीव स्वयं समझे तो धर्म प्राप्त करे और जब स्वयं धर्म को प्राप्त करता है, तब विनय के लिए यह कहा जाता है कि सद्गुरु ने धर्म समझाया; यह व्यवहार है किन्तु वास्तव में कोई किसी को धर्म समझाने के लिए समर्थ नहीं है। इसप्रकार के निश्चय की यदि प्रतीति हो तो इस व्यवहार का कथन सच्चा कहा जा सकता है; ऐसा न हो तो व्यवहार असत् है ही।

निमित्त का तर्क था कि हे उपादान ! तेरी यह सब बात तो ठीक है; किन्तु तेरी आत्मा में जो दोष होता है, वह दोष क्या तेरे स्वभाव में से आता है ? कदापि नहीं। दोष के लिए अन्य वस्तु की उपस्थिति आवश्यक है;

इसलिए मैं कहता हूँ कि निमित्त के बल से ही दोष होते हैं।

उपादान ने इसके उत्तर में कहा कि हे निमित्त ! जब उपादान अपना कार्य करता है, तब निमित्त की उपस्थिति होती है। यों श्री सर्वज्ञ भगवान ने देखा है, तब मैं उससे इन्कार कैसे कर सकता हूँ; परन्तु अन्य उपस्थिति वस्तु आत्मा को बिलकुल विकार नहीं कराती।

“यदि मात्र उपादान से ही कार्य हो सकता है तो क्या बिना कर्म के ही आत्मा में अवगुण होते हैं ? बिना कर्म के दोष नहीं होते, इसलिए कर्म का बल ही आत्मा में रागादि उत्पन्न कराता है।” इसप्रकार अज्ञानी जन उपादान को पराधीन मानते हैं। उपादान की स्वाधीनता को प्रकट करते हुए ज्ञानी कहते हैं कि जीव स्वयं समझे तो वह मुक्ति को प्राप्त कर करता है, उसे कर्म नहीं रोक सकते और जीव स्वयं दोष करता है तो कर्म इत्यादि अन्य वस्तु को निमित्त कहा जाता है; परन्तु कर्म जबरदस्ती से आत्मा को विकार नहीं कराते। इसप्रकार परवस्तु की निमित्तरूप उपस्थिति है, इतना ज्ञान ने स्वीकार किया, किन्तु वह उपादान के लिए किंचित्मात्र भी कुछ करता है - इस बात को बिलकुल जड़ से ही समाप्त कर दिया है।२१।

अब निमित्त कुछ ढीला होकर उपादान और निमित्त दोनों को एक समान (५० प्रतिशत) कहने की लिए उपादान को समझाता है -

जो देख्यो भगवान ने, सो ही साँचो आहिं।

हम तुम संग अनादि के, बली कहोगे काहिं ॥२२॥

अर्थ :- निमित्त कहता है कि भगवान ने जो देखा है, वह सच है। मेरा और तेरा अनादिकालीन सम्बन्ध है, इसलिए हम दो में बलवान किसे कहा जाये ? अर्थात् कम से कम यह तो कहो हम दोनों समान हैं, समकक्ष हैं।

निमित्त - हे उपादान ! भगवान श्री जिनेन्द्रदेव ने हम दोनों को (उपादान-निमित्त तथा निश्चय-व्यवहार को) देखा है, तब भगवान ने जो देखा है, वह सत्य है। हम दोनों अनादिकाल से एकसाथ रह रहे हैं; इसलिए

कोई बलवान नहीं है – हम दोनों समान हैं, कम से कम इतना तो कहो।

उपादान – नहीं, नहीं। निमित्ताधीन परावलम्बी दृष्टि से (व्यवहारनय का आश्रय से) तो जीव अनादिकाल से परिभ्रमण कर रहा है। संसार के अधर्म – स्त्री, धन इत्यादि के निमित्त से होते हैं और धर्म देव-गुरु-शास्त्र के निमित्त से होते हैं। इसप्रकार पराधीन माननेवाला निमित्तदृष्टि से ही मिथ्यात्व है और उसी का फल संसार है।

निमित्त – भगवान ने एक कार्य में दो कारण देखे हैं, उपादान कारण और निमित्त कारण। इसलिए कर्म में उपादान और निमित्त दोनों के ५०-५० प्रतिशत रखिये। स्त्री का निमित्त हो तो विकार है और गाली देनेवाला हो तो क्रोध होता है। इसलिए ५० प्रतिशत उपादान करता है। इसप्रकार दोनों के एकत्रित होने से कार्य होता है, यह सीधा हिसाब है।

उपादान – गलत, बिलकुल गलत। यह ५०-५० प्रतिशत का सीधा हिसाब नहीं, किन्तु दो और दो = तीन (२+२ = ३) जैसी स्पष्ट भूल है। यदि स्त्री अथवा गाली ५० प्रतिशत विकार उत्पन्न करती हो तो केवली सर्वज्ञ के भी विकार होना चाहिए, किन्तु कोई भी निमित्त एक प्रतिशत भी किसी को भी विकार कराने में समर्थ नहीं है। जब जीव स्वयं शत-प्रतिशत स्वतः विकार करता है, तब परवस्तु की उपस्थिति को निमित्त कहा जाता है। इस समझ में ही स्पष्ट हिसाब है कि प्रत्येक द्रव्य भिन्न रहें और स्वतंत्रतया अपनी-अपनी अवस्थाओं के कर्ता होने से कोई द्रव्य किसी दूसरे का कुछ भी नहीं कर सकता।

इस दोहे में निमित्त की प्रार्थना की गई है कि हम दोनों समकक्षी रहें। अनादिकाल से जीव के साथ कर्म चिपके हुए हैं और वे जीव के विकार में निमित्त हो रहे हैं। निमित्तरूप कर्म अनादिकाल से हैं; इसलिए उन्हें जीव के साथ समकक्षी तो रखिये।

अब उपादान ऐसा उत्तर देता है कि निमित्तरूप जो कर्म परमाणु हैं, वे तो बदलते ही जाते हैं और मैं उपादान स्वरूप आत्मा वैसा का वैसा त्रिकाल रहता हूँ, इसलिए मैं ही बलवान हूँ –

उपादान कहे वह बली, जाको नाश न होय।

जो उपजत विनशत रहे, बली कहा तैं सोय ॥२३॥

अर्थ :- उपादान कहता है कि जिसका नाश नहीं होता, वह बलवान है, जो उत्पन्न होता है और जिसका विनाश होता है वह बलवान कैसे हो सकता है ?

नोट – उपादान स्वयं सदा कार्यरूप परिणत होनेवाली अखण्ड एकरूप वस्तु है, इसलिए उसका नाश नहीं होता। निमित्त तो संयोगरूप है, आता है और जाता है, इसलिए वह नाश रूप है; अतः उपादान ही बलवान है।

जीव स्वयं अज्ञान भाव से भले अनादिकाल से नया-नया राग-द्वेष किया करे, तथापि निमित्त कर्म अनादि से एक से नहीं रहते, वे तो बदलते ही रहते हैं। पुराने निमित्त कर्म खिर जाते हैं और नये बँधते हैं तथा उनका समय पूरा होने पर वे भी खिर जाते हैं। जीव यदि नया राग-द्वेष करता है तो उन कर्मों को निमित्त कहा जाता है। इसप्रकार उपादान स्वरूप आत्मा तो अनादिकाल से वैसा का वैसा ही रहता है और कर्म बदलते रहते हैं, इसलिए मैं ही (उपादान ही) बलवान हूँ। सच्चे देव, गुरु भी पृथक्-पृथक् बदलते जाते हैं और उनकी सच्ची वाणी भी बदलती जाती है, (भाषा के शब्द सदा एक से नहीं रहते) परन्तु सच्चे देव, शास्त्र, गुरु और उनकी वाणी का ज्ञान करते समय मेरा अपना ही ज्ञान ज्ञान से काम करते हैं। मैं आत्मा त्रिकाल हूँ और गुण अथवा दोष के निमित्त सब बदलते ही जाते हैं। कर्मों के परमाणु भी बदलते जाते हैं, तब फिर कर्म बड़े हैं या मैं ? अज्ञानियों की यह महा मिथ्यात्वरूप भयंकर भूल है कि वे ऐसा मानते हैं कि कर्म आत्मा के पुरुषार्थ को रोकते हैं, आत्मा के पुरुषार्थ को पराधीन मानने वाले

महामिथ्यात्वरूप सबसे बड़े दोष को अपने ऊपर ले लेते हैं। वीतराग शासन में परम सत्य वस्तु, स्वरूप से प्रकट है कि आत्मा के भाव में कर्म की शक्ति बिलकुल नहीं है, मात्र आत्मा का ही बल है। आत्मा सम्पूर्ण स्वाधीन है। अपनी स्वाधीनता से अपने चाहे जैसे भाव कर सकता है। आत्मा स्वयं जिस समय जैसा पुरुषार्थ करता है, तब वैसा ही पुरुषार्थ हो सकता है इसप्रकार की आत्मस्वाधीनता की समझ ही मिथ्यात्व के सबसे बड़े दोष को नाश करने का एकमात्र उपाय है।

अरे भाई ! तू आत्मा स्वतंत्र वस्तु है, तेरे भाव से तुझे हानि-लाभ है, कोई परवस्तु तुझे हानि-लाभ नहीं करती। जीव यदि इसप्रकार की यथार्थ प्रतीति करे तो वह स्वलक्ष्य से मुक्ति को प्राप्त करे; परन्तु यदि जीव अपने भाव को न पहचाने और यही मानता रहे कि पर निमित्त से निज को हानि-लाभ होता है तो उसका परलक्ष्य कदापि नहीं छूट सकता और स्व की पहचान भी कभी नहीं हो सकती, इसलिए वह संसार में चक्कर लगाया करता है। अतः उपादान और निमित्त - इन दोनों के स्वरूप को पहचानकर यह निश्चय करना चाहिए कि उपादान और निमित्त दोनों पृथक्-पृथक् पदार्थ हैं, कभी कोई एक-दूसरे का कार्य नहीं करते। इसप्रकार निश्चय करके निमित्त के लक्ष्य को छोड़कर अपने उपादान स्वरूप को लक्ष्य में लेकर स्थिर होना ही सुखी होने का - मोक्ष का उपाय है। २३।

निमित्त का तर्क -

उपादान तुम जोर हो, तो क्यों लेत अहार।

पर निमित्त के योग सों, जीवत सब संसार ॥२४॥

अर्थ :- निमित्त कहता है - हे उपादान ! यदि तेरा बल हो तो तू आहार क्यों लेता है ? संसार के सभी जीव पर निमित्त के योग से जीते हैं।

हे उपादान ! इन कर्म इत्यादि को जाने दो। ये तो दृष्टि से दिखाई नहीं

देते, किन्तु यह तो स्पष्ट दिखाई देता है कि आहार के निमित्त से तू जी रहा है। यदि तेरी शक्ति हो तो तू आहार क्यों लेता है ? बिना आहार के अकेला क्यों नहीं जीता ? अरे ! छोटे गुणस्थान तक मुनिराज भी आहार लेते हैं, तब आहार के ही निमित्त से जी रहा है। क्या आहार के बिना मात्र उपादान पर जिया जा सकता है ? सच तो ये है कि निमित्त ही बलवान है।

इसप्रकार निमित्त पक्ष का वकील तर्क करता है। जो वकील होता है, वह अपने ही मुवक्कल की ओर से तर्क उपस्थित करता है। वह अपने विरोधी पक्ष के सच्चे तर्क को जानता हुआ भी कभी उस तर्क को पेश नहीं करता। यदि वह विरोधी पक्ष की ओर से तर्क को उपस्थित करे तो वह वकील कैसे कहलायेगा ? यहाँ निमित्त का वकील कहता है कि निमित्त की कुछ दहाइयाँ हैं, मात्र उपादान ही काम नहीं करता; इसलिए निमित्त की शक्ति का आधार भी स्वीकार करो।

उपादान का उत्तर -

जो अहार के जोग सों, जीवत है जगमाहिं।

तो वासी संसार के, मरते कोऊ नाहिं ॥२५॥

अर्थ :- उपादान कहता है कि यदि आहार के योग से जगत के जीव जीते हों तो संसारवासी कोई भी जीव नहीं मरता।

हे निमित्त ! आहार के कारण जीवन नहीं टिकता। यदि जगत के जीवों का जीवन आहार से टिकता हो तो इस जगत में किसी जीव को मरना ही नहीं चाहिए, किन्तु खाते-खाते भी जगत के अनेक जीव मरते देखे गये हैं। इससे सिद्ध है कि आहार जीवन का कारण नहीं है। सब अपनी-अपनी आयु से जीते हैं। जब तक आयु होती है, तब तक जीता है और आयु के न होने पर चक्रवर्ती, वासुदेव के लिए बनाये गये सिंह केशरिया लड्डू खाने पर भी मर जाता है। जहाँ आयु समाप्त हुई, वहाँ

आहार क्या करेगा ? आठों पहर खान-पान और आराम से शरीर की चाकरी करने पर भी जीव क्यों मर जाते हैं ? आहार के निमित्त को लेकर उपादान नहीं टिकता एक वस्तु में दूसरी वस्तु के कारण कुछ भी नहीं होता, इसलिए हे निमित्त ! तेरी बात गलत है। भोजन करने के लिए बैठा हो, भोजन करके पेट भर लिया हो, हाथ में ग्रास मौजूद हो, फिर भी शरीर छूट जाता है। यदि आहार से शरीर टिकता हो तो खानेवाला कोई नहीं मरना चाहिए और सभी उपवासी मर जाना चाहिए; परन्तु आहार करनेवाले भी मरते हैं और बिना आहार के भी पवनभक्षी वर्षों तक जीते रहते हैं; इसलिए आहार के साथ जीवन-मरण का कोई सम्बन्ध नहीं है। आहार का संयोग उन परमाणुओं के कारण से आते हैं और शरीर के परमाणु शरीर के कारण टिकते हैं। आहार और शरीर दोनों के परमाणु भिन्न हैं।

आहार की तरह दवा के कारण भी शरीर नहीं टिकता और न दवा के कारण रोग ही दूर होता है। हजारों आदमी औषधियाँ लाते हैं, खाते हैं; किन्तु रोग नहीं मिटता और दवा के बिना भी रोग मिट जाता है। यह तो स्वतंत्र द्रव्य की स्वतंत्र अवस्थायें हैं। एक वस्तु के कारण दूसरी वस्तु में कार्य हो - यह बात पवित्र जैनदर्शन को मान्य नहीं है; क्योंकि वस्तुस्थिति ही वैसी नहीं है। जिसे ऐसा विपरीत विश्वास है कि एक द्रव्य के कारण दूसरे द्रव्य का कार्य होता है, वह महा अज्ञानी है, उसे वस्तुस्थिति की खबर नहीं है, वह जैनधर्म को नहीं जानता।

अब निमित्त तर्क उपस्थित करता है -

सूर सोम मणि अग्नि के, निमित्त लखें ये नैन।

अंधकार में कित गयो, उपादान दृग दैन ॥२६॥

अर्थ :- निमित्त कहता है - सूर्य, चन्द्रमा, मणि अथवा अग्नि का निमित्त हो तो आँख देख सकती है। यदि उपादान देखने का काम कर सकता हो तो अन्धकार में उसको देखने की शक्ति कहाँ चली जाती है (अन्धकार में

आँख से क्यों नहीं दिखाई देता ?)।

तू सर्वत्र 'मैं-मैं' करता है और यह कहता है कि सब कुछ मेरी (उपादान की) शक्ति से ही होता है; परन्तु हे उपादान ! देखने का काम तो तू सूर्य, चन्द्र, मणि अथवा दीपक के निमित्त से ही कर सकता है। यदि तेरे ज्ञान से ही जानना होता हो तो अँधेरे में तेरा ज्ञान कहाँ चला जाता है ? दीपक इत्यादि के बिना तू अँधेरे में क्यों नहीं देख सकता ? और फिर बिना पुस्तक के तुझे ज्ञान क्यों नहीं होता ? क्या बिना शास्त्र के मात्र ज्ञान में से ज्ञान होता है ? देखो, यदि सामने समयसार शास्त्र न रख दिया जाये तो क्या इसके बिना ज्ञान होता है ? यदि ज्ञान से ही ज्ञान हो तो सामने शास्त्र क्यों रखते हो ? तात्पर्य यह है कि सर्वत्र मेरा ही बल है। तू अपने 'अहं' को छोड़ और यह स्वीकार कर कि मेरी भी शक्ति है - ऐसा निमित्त का तर्क है।

उपादान का उत्तर -

सूर सोम मणि अग्नि जो, करे अनेक प्रकाश।

नैन शक्ति विन ना लखैं, अंधकार सम भास ॥२७॥

अर्थ :- उपादान कहता है कि सूर्य, चन्द्रमा, मणि और दीपक अनेक प्रकार का प्रकाश करते हैं, तथापि देखने की शक्ति के बिना कुछ भी नहीं दिखाई देता; सब अंधकार-सा भासित होता है।

अरे भाई ! किसी परवस्तु के द्वारा ज्ञान नहीं हो सकता, ज्ञान का प्रकाश करनेवाला तो ज्ञानस्वरूपी आत्मा है और प्रकाश इत्यादि का प्रकाशक भी आत्मा ही है। सूर्य इत्यादि से ज्ञान प्रकाशित नहीं होता अर्थात् पर निमित्त से आत्मा ज्ञान नहीं करते। हे निमित्त ! यदि सूर्य, चन्द्रमा या दीपक से दिखाई देता हो तो अँधेरे के पास उन सबको रखकर उसमें देखने की शक्ति आ जानी चाहिए, किन्तु सूर्य इत्यादि सब कुछ होने पर भी अँधेरे को क्यों नहीं दिखाई देता ? उपादान में ही जानने की शक्ति

नहीं है, इसलिए वह नहीं जान सकता। यदि उपादान में ही जानने की शक्ति हो तो (बिल्ली इत्यादिक) अँधेरे में भी देख सकते हैं। जहाँ प्राणी की आँख ही जानने की शक्ति से युक्त है, वहाँ उसे कोई अँधेरा नहीं रोक सकता। इसीप्रकार सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान इत्यादि आत्मा के गुणों का चैतन्यप्रकाश किसी संयोग से प्रकट नहीं होता किन्तु आत्मस्वभाव से ही वह प्रकट होता है। जहाँ आत्मा स्वयं पुरुषार्थ के द्वारा सम्यग्दर्शनादि रूप परिणामन करता है, वहाँ उसे कोई निमित्त रोकनेवाला अथवा सहायक नहीं है। तात्पर्य यह है कि निमित्त का दूसरों पर कोई बल नहीं है।

इसीप्रकार शास्त्र की सहायता से भी ज्ञान नहीं होता। समयसार शास्त्र हजारों आदमियों के पास एक-सा ही होता है। यदि शास्त्र से ज्ञान होता हो तो उन सबको एक-सा ज्ञान ही ज्ञान होना चाहिए, परन्तु ऐसा नहीं होता। एक ही शास्त्र के होने पर भी कोई सीधा अर्थ समझकर मिथ्यात्व का नाश करता है और कोई विपरीत अर्थ करके उलटा मिथ्यात्व को पुष्ट करता है - ऐसी स्थिति में शास्त्र क्या करेगा ? समझ तो अपने ज्ञान में से ही निकाली जाती है। किसी शास्त्र में से ज्ञान नहीं हो सकता। मैं अपने ज्ञान के द्वारा अपने स्वतंत्र आत्मस्वभाव की पहचान करूँ तो मुझे धर्म का लाभ हो सकता है। जो किसी संयोग से लाभ मानते हैं, वे अज्ञानी हैं।

अहा ! देखो तो उपादान स्वभाव की कितनी शक्ति है। कहीं भी किञ्चित्मात्र भी पराधीनता नहीं पुषाती। ऐसे उपादान स्वरूप को पहचानकर उसका जो आश्रय करता है, वह अल्पकाल में ही मुक्ति को प्राप्त कर लेता है। जीवों ने अनादिकाल से अपनी शक्ति की पहचान ही नहीं की, इसलिए पर की आवश्यकता को मान बैठे; इसीलिए पराधीन होकर दुःखी हो रहे हैं - यह जिसप्रकार कहा जाता है, उसीप्रकार अपने को स्वाधीन रूप में सर्वप्रथम पहचानना चाहिए - यही मुक्ति का मार्ग है।

अब निमित्त तर्क उपस्थित करता है -

कहै निमित्त वे जीव को, मो बिन जग के माहिं ।

सबै हमारे वश परे, हम बिन मुक्ति न जाहिं ॥२८॥

अर्थ :- निमित्त कहता है कि मेरे बिना जगत में मात्र जीव क्या कर सकता है ? सभी मेरे वश में हैं, मेरे बिना जीव मोक्ष भी नहीं जा सकता।

बिना निमित्त के जीव मुक्ति को नहीं पाता। पहले मनुष्य-शरीर का निमित्त; फिर देव, शास्त्र, गुरु का निमित्त, फिर मुनिदशा में महाव्रतादि का शुभराग का निमित्त - इसप्रकार समस्त निमित्त की परम्परा के बिना, जीव मुक्ति प्राप्त नहीं कर सकता। क्या बीच में व्रतादि का पुण्य आये बिना कोई जीव मुक्त हो सकता है ? कदापि नहीं। इससे सिद्ध है कि पुण्य निमित्त है और उसी के बल से जीव मुक्ति प्राप्त करता है। यह निमित्त का तर्क है।

उपादान का उत्तर -

उपादान कहै रे निमित्त ! ऐसे बोल न बोल ।

तोको तज निज भजत हैं, ते ही करें किलोल ॥२९॥

अर्थ :- उपादान कहता है कि हे निमित्त ! ऐसी बात मत कर। तेरे ऊपर की दृष्टि को छोड़कर जो जीव अपना भजन करता है, वही किलोल (आनन्द) करता है।

हे निमित्त ! तेरे प्रताप से जीव मुक्ति को प्राप्त करता है - इस व्यर्थ बात को रहने दे; क्योंकि शरीर, देव-शास्त्र-गुरु अथवा पंचाणुव्रत - इन सब निमित्तों के लक्ष्य से तो जीव को राग ही होता है और उससे संसार में परिभ्रमण करना होता है, किन्तु जब इन सब निमित्तों के लक्ष्य से जीव को राग होता है और उसे संसार में परिभ्रमण करना होता है, किन्तु जब इन सब निमित्तों के लक्ष्य को छोड़कर और पंच महाव्रतों के विकल्प को

भी छोड़कर, अपने अखण्डानन्दी आत्मस्वभाव की भावना करके, सम्यग्दर्शन-ज्ञानपूर्वक जो अन्तरंग में स्थिरता करता है, वही जीव मुक्ति को पाता है और वही परमानन्द को भोगता है। निमित्त के लक्ष्य से आनन्दानुभव नहीं हो सकता। जो निमित्त की दृष्टि में रुक जाते हैं, वे मुक्ति को नहीं पाते - इसप्रकार निमित्त के बलवान होने का तर्क खण्डित हो गया।

निमित्त कहता है -

कहै निमित्त हमको तजै, ते कैसे शिव जात।

पंच महाव्रत प्रकट है, और हु क्रिया विख्यात ॥३०॥

अर्थ :- निमित्त कहता है कि मुझे छोड़कर कोई मोक्ष कैसे जा सकता है ? पंचमहाव्रत तो प्रकट हैं ही और दूसरी क्रियायें भी प्रसिद्ध हैं, जिन्हें लोग मोक्ष का कारण मानते हैं।

शास्त्रों में तो निमित्त के पक्ष में शास्त्रों के पृष्ठ के पृष्ठ भरे पड़े हैं, तब फिर आप निमित्त की सहायता से इन्कार कैसे करते हैं ? पंच महाव्रत, समिति, गुप्ति इत्यादि का शास्त्रों में विशद् वर्णन है। क्या उनको धारण किए बिना जीव मोक्ष को जा सकता है। मुझे छोड़कर जीव मोक्ष जा ही नहीं सकता। अहिंसादि पंच महाव्रत में पर का लक्ष्य करना होता है या नहीं ?

पंच महाव्रत में पर लक्ष्य को लेकर जो राग का विकल्प उठता है, उसे आगे रखकर निमित्त कहता है कि क्या पंच महाव्रत के राग के बिना मुक्ति होती है ? बात यह है कि पंच महाव्रत के शुभराग से मुक्ति को माननेवाले अज्ञानी बहुत हैं, इसलिए निमित्त ने तर्क उपस्थित किया है। तर्क सभी रखे ही जाते हैं। यदि ऐसे विपरीत तर्क न हों तो जीव का संसार कैसे बना रहे ? (ये सब निमित्ताधीन तर्क संसार को बनाये रखने के लिए ठीक हैं अर्थात् निमित्ताधीनदृष्टि से संसार टिका हुआ है।) यदि निमित्ताधीनदृष्टि

को छोड़कर स्वभावदृष्टि करें तो संसार नहीं टिक सकता।

उपादान का उत्तर -

पंच महाव्रत जोग त्रय, और सकल व्यवहार।

पर कौ निमित्त खपाय के, तब पहुँचे भवपार ॥३१॥

अर्थ :- उपादान कहता है पंच महाव्रत, तीन योग (मन, वचन, काय) की ओर का जोड़ान और समस्त व्यवहार तथा पर निमित्त के लक्ष्य को दूर करके ही जीव भव से पार होता है।

ज्ञानमूर्ति आत्मा का जितना पर लक्ष्य होता है, वह सब विकार भाव है; भले ही पंच महाव्रत हों, किन्तु वे भी विकार हैं। वह विकारभाव तथा अन्य जो-जो व्यवहारभाव हैं, वे सब राग को और निमित्त को स्वलक्ष्य द्वारा जीव जब छोड़ देते हैं, तब ही वह मोक्ष को पाता है। पुण्य-पापरहित आत्मस्वभाव की श्रद्धा, ज्ञान और स्थिरता के द्वारा ही मुक्ति होती है, उसमें कहीं भी राग नहीं होता। पंच महाव्रत आस्रव हैं, विकार हैं; वह आत्मा का यथार्थ चारित्र नहीं है। जो उसे चारित्र का यथार्थ स्वरूप मानता है, वह मिथ्यादृष्टि है। आत्मा का चारित्र धर्म उससे परे है। जगत के अज्ञानी जीवों को यह अति कठिन लग सकता है, किन्तु वही परम सत्य, महा हितकारी है।

प्रश्न : पंच महाव्रत चारित्र भले न हो, किन्तु वह धर्म तो है या नहीं ?

उत्तर : पंच महाव्रत न तो चारित्र है और न धर्म ही। सर्वप्रकार से राग से रहित मात्र ज्ञायक स्वभावी आत्मा की सम्यक् प्रतीति करने के बाद ही विशेष स्वरूप की स्थिरता करने से पूर्व पंच महाव्रत के शुभ विकार का भाव मुनिदशा में आ जाता है; किन्तु वह विकल्प है, राग है, विकार है; धर्म नहीं है क्योंकि वे भाव आत्मा के शुद्ध चारित्र केवलज्ञान को रोकते हैं। आत्मा के गुण को रोकनेवाले भावों में जो धर्म मानता है, वह आत्मा के पवित्र गुणों का घोर अनादर कर रहा है, उसे आत्मप्रतीति

नहीं है।

आत्मप्रतीति युक्त सातवें छठे गुणस्थान में आत्मानुभव में झूलते हुए मुनि के पंच महाव्रत का जो विकल्प छठे गुणस्थान में होता है; वह राग है, आस्रव है। वह आत्मा के केवलज्ञान में विघ्न करता है। निमित्त ने कहा था कि वह मोक्ष में मदद करता है; किन्तु उपादान कहता है कि वह मोक्ष में बाधक है। इन विकल्पों को तोड़कर जीव जब स्वरूप स्थिरता की श्रेणी माँडता है, तब मोक्ष होता है; किन्तु पंच महाव्रतादि को रखकर कभी भी मोक्ष नहीं होता, इसलिए हे निमित्त ! तेरे द्वारा उपादान का एक भी कार्य नहीं होता।

निमित्त कहता है -

कहै निमित्त जग में बड़यो, मो तैं बड़ौ न कोय।

तीन लोक के नाथ सब, मो प्रसाद तैं होय ॥३२॥

अर्थ :- निमित्त कहता है कि जगत में मैं बड़ा हूँ, मुझसे बड़ा कोई नहीं है; तीनलोक का नाथ भी मेरी कृपा से होता है।

नोट - सम्यग्दर्शन की भूमिका में ज्ञानी जीव के शुभ विकल्प आने पर तीर्थकर नामकर्म का बन्ध होता है - इस दृष्टान्त को उपस्थित करके निमित्त अपनी बलवत्ता को प्रकट करना चाहता है।

आत्मस्वभाव से अज्ञान और राग का पक्ष करनेवाला कहता है कि भले सम्यग्दृष्टि जीव शुभराग का आदर नहीं करते, उसे अपना नहीं मानते, तथापि त्रिलोकीनाथ जो पद है, वह तो मेरी ही (निमित्त की) कृपा से मिलता है अर्थात् निमित्त की ओर लक्ष्य किए बिना तीर्थकर गोत्र नहीं बंधता, अतः त्रिलोकीनाथ तीर्थकर देव भी मेरे ही कारण तीर्थकर होते हैं। यह निमित्त पक्ष का तर्क है; किन्तु इसमें भारी भूल है। निमित्त की कृपा से (पर लक्ष्य राग से) तो जड़ परमाणुओं का बंध होता है, उनसे कहीं तीर्थकर पद प्रकट नहीं होता। तीर्थकर पद तो आत्मा की वीतराग

दशा से प्रकट होता है। निमित्तधीन पराश्रित दृष्टिवाला मानता है कि तीर्थकर गोत्र के पुण्य परमाणुओं का बंध होने से कोई बड़प्पन है। इसप्रकार वह पुद्गल की धूली से आत्मा का बड़प्पन बतलाता है, परन्तु निमित्त की ओर के जिस भाव से तीर्थकर नाम का कर्मरूपी जड़ परमाणुओं का बंध होता है, वह भाव बड़ा है या उपादान की ओर से जिस भाव से उस राग को दूर करके पूर्ण वीतरागता और केवलज्ञान दशा प्रकट होती है, वह भाव बड़ा है।

इतना ध्यान रखना चाहिए कि तीर्थकर नामकर्म के परमाणुओं का जो बंध होता है, वह रागभाव से होता है; परन्तु वीतरागता और केवलज्ञान कहीं उस तीर्थकर नामकर्म के बन्ध के रागभाव से नहीं होता, परन्तु उस रागभाव को दूर करके स्वभाव की स्थिरता से ही त्रिलोक पूज्य अरहन्त पद प्रकट होता है, इसलिए राग बड़ा नहीं है; किन्तु राग को दूर करके पूर्ण पद को प्राप्त करके स्वरूप को प्रकट करना ही महान पद है।

उपादान का उत्तर -

उपादान कहै तू कहा, चहुंगति में ले जाय।

तो प्रसाद तैं जीव सब, दुःखी होहिं रे भाय ॥३३॥

अर्थ :- उपादान कहता है कि अरे निमित्त ! तू कौन ? तू तो जीव को चारों गतियों में ले जाता है। भाई ! तेरी कृपा से सभी जीव दुःखी ही होते हैं।

निमित्त यह कहता है कि मेरी कृपा से जीव त्रिलोकीनाथ होता है। उसके विरोध में उपादान कहता है कि तेरी कृपा से तो जीव संसार की चारों गतियों में परिभ्रमण करता है। जिस भाव से तीर्थकर नामकर्म का बंध होता है, वह भाव ही संसार का कारण है। इसे ध्यान देकर बराबर समझिये। यह तनिक कठिन-सी बात है। जिस भाव से तीर्थकर नामकर्म का बंध होता है वह भाव विकार है, संसार है? क्योंकि जिस भाव से नया बंध हुआ,

उस राग के कारण जीव को नया भव ग्रहण करना पड़ता है, इसलिए निमित्त की कृपा से (राग से) जीव चार गतियों में परिभ्रमण करता है। राग का फल संसार है। यद्यपि तीर्थकर प्रकृति का बंध हो - इसप्रकार का आत्म-प्रतीति युक्त राग सम्यग्दर्शन भी हो सकता है, तथापि वह तीर्थकर नामकर्म के बंध के राग से खुश नहीं होते, प्रत्युत उसे हानि कर्ता ही मानते हैं। जिस भाव से तीर्थकर प्रकृति का बंध होता है, उस भाव से तीर्थकर पद प्रकट नहीं होता; किन्तु उस भाव के नाश से केवलज्ञान और तीर्थकर पद प्रकट होता है।

निमित्त ने राग की ओर से तर्क उपस्थित किया था और उपादान स्वभाव की ओर से तर्क उपस्थित करता है। सम्यग्ज्ञान के द्वारा इसप्रकार स्पष्टीकरण किया गया है कि निमित्त को लक्ष्य करके होनेवाला तीर्थकर प्रकृति का राग भाव भव-भ्रमण (संसार) का कारण है और उपादान स्वरूप के लक्ष्य से स्थिरता का होना मोक्ष का कारण है। निमित्त के लक्ष्य से होनेवाला भाव उपादानस्वरूप की स्थिरता को रोकनेवाला है। किसी भी प्रकार का राग भाव संसार का ही कारण है, फिर चाहे वह राग तीर्थच पर्याय का हो अथवा तीर्थकर प्रकृति का हो। देखो, श्रेणिक राजा को आत्मप्रतीति थी, तथापि वे राग में अटक रहे थे, इसलिए तीर्थकर प्रकृति का बंध होने पर भी उन्हें दो भव धारण करना पड़ेंगे।

प्रश्न : दो भव ग्रहण करना पड़े - यह भले ही अच्छा न हो, किन्तु जिस भव में तीर्थकर प्रकृति का बंध करता है, यदि उसी भव से मोक्ष प्राप्त करे तो जिस भाव से तीर्थकर प्रकृति का बंध हुआ, वह भाव अच्छा है या नहीं ?

उत्तर : सिद्धान्त में अन्तर नहीं पड़ता ? ऊपर कहा गया है कि 'किसी भी प्रकार का राग भाव हो, वह संसार का ही कारण है' - भले ही कोई जीव जिस भव से तीर्थकर प्रकृति का बंध करता है, उसी भव से

मोक्ष जाये, तथापि जिस भाव से तीर्थकर प्रकृति का बंध होता है, वह रागभाव ही है और वह राग भाव केवलज्ञान और मोक्ष को रोकनेवाला है। जब उस राग को दूर किया जाता है, तब केवलज्ञानी तीर्थकर होता है।

प्रश्न : भले ही तीर्थकर प्रकृति का राग बुरा हो, किन्तु जिस जीव ने तीर्थकर प्रकृति का बंध किया है, उस जीव को केवलज्ञान अवश्य होता ही है। तीर्थकर प्रकृति का बंध करने से इतना तो निश्चय हो ही जाता है कि वह जीव केवलज्ञान और मोक्ष को अवश्य प्राप्त करेगा, इसलिए निमित्त का इतना बल तो मानोगे या नहीं ?

उत्तर : अरे भाई ! केवलज्ञान और मोक्षदशा आत्मा के सम्यग्दर्शनादि गुणों से होती है या जिस भाव से तीर्थकर प्रकृति का बंध हुआ, उस रागभाव से होती है ? रागभाव से मोक्ष का होना निश्चित नहीं है, किन्तु जिस जीव के सम्यग्दर्शन का अटूट बल है, उसको लेकर वह अल्पकाल में ही मुक्ति को प्राप्त करेगा - यह निश्चित ही है, जो राग से धर्म मानता है और राग से केवलज्ञान का होना मानता है, वह तीर्थकर प्रकृति तो नहीं बाँधता किन्तु तीर्थच आदि तुच्छ प्रकृति को बाँधता है, क्योंकि उसकी मान्यता में राग के प्रति आदर है; इसलिए वह वीतराग स्वभाव का अनादर करता हुआ अपनी ज्ञानशक्ति को हारकर हलकी गति में चला जायेगा।

और फिर यह भी एक समझने योग्य न्याय है कि जिस कारण से तीर्थकर प्रकृति का बंध हुआ था, उस कारण को दूर किये बिना वह प्रकृति फल भी नहीं देती। जिस तीर्थकर प्रकृति का बंध होता है, वह तब तक फल नहीं देती जब तक जिस रागभव से तीर्थकर प्रकृति का बंध किया था, उससे विरुद्ध भाव के द्वारा उस रागभाव का सर्वथा क्षय करके केवलज्ञान प्रकट किया जाता और वह फल भी आत्मा को नहीं मिलता, किन्तु बाह्य में समवशरणादि की रचना के रूप में प्रकट होता है। इसप्रकार जिस भाव से तीर्थकर प्रकृति का बंध किया था, वह भाव तो केवलज्ञान

के होने पर छूट ही जाता है, वह भाव केवलज्ञान में क्या सहायता कर सकता है ? इसलिए हे निमित्त ! तेरी उपर्युक्त दृष्टि से जीव तीन लोक का नाथ तो नहीं होता, किन्तु अज्ञानभाव से वह तीन लोक में परिभ्रमण करता है। तात्पर्य यह है कि तू जीव को चार गतियों में ले जाता है।

उपादानदृष्टि – इसका अर्थ है स्वाधीन स्वभाव की स्वीकृति। मैं परिपूर्ण स्वरूप हूँ, अपने पवित्र दशारूपी कार्य को बिना किसी की सहायता के मैं ही अपनी शक्ति से करता हूँ। इसप्रकार अपने स्वभाव की श्रद्धा का जो बल है, सो उपादानदृष्टि है और वह मुक्ति का उपाय है।

निमित्तदृष्टि – इसका अर्थ है – अपने स्वभाव को भूलकर परद्रव्यानुसारी भाव होते हैं – ऐसा मानना। स्वाधीन आत्मा के लक्ष्य को भूलकर जो भाव होते हैं वे सब भाव पराश्रित हैं और वे पराश्रित भाव संसार के कारण हैं। साक्षात् तीर्थकर के लक्ष्य से जो भाव होते हैं, वे भाव भी दुःखरूप और संसार के ही कारण हैं। पुण्य का राग भी पर लक्ष्य से ही होता है, इसलिए वह दुःख और संसार का ही कारण है; अतः पराधीन दुःखरूप होने से निमित्तदृष्टि त्यागने योग्य है और स्वाधीन-सुखरूप होने से उपादान स्वभावदृष्टि ही अंगीकार करने योग्य है।

अरे भाई ! यह तो श्री भगवान के पास से आये हुए हीरे शाण पर चढ़ते हैं। यदि किसी भी न्याय की विपरीत बात को पकड़ रखे तो संसार होता है और यदि यथार्थ संधि करके बराबर समझे तो मुक्ति होती है। अहा ! यह बात तो वीतराग भगवान ही कहते हैं। वीतराग के सेवक भी तो वीतराग ही हैं। वीतराग और वीतराग के सेवकों के अतिरिक्त यह बात करने के लिए कोई समर्थ नहीं है।

त्रैकालिक स्वभाव होने पर भी यह आत्मा अनादिकाल से क्यों परिभ्रमण कर रहा है ? बात यह है कि जीव ने अनादिकाल से अपनी भूल

को नहीं पहचाना। बंध-मुक्त स्वयं अपने भाव से ही होता है, तथापि पर के कारण से अपने को बंधन-मुक्त मानता है। अनादिकाल की यह महा विपरीत शल्य रह गई है कि पुण्य से और निमित्तों से लाभ होता है, परन्तु भाई ! आत्मा में अनादिकाल से किसप्रकार की भूल है और वह किस कारण से है यह जानकर उसे दूर किये बिना नहीं चल सकता। जीव यह मानता है कि पुण्य अच्छा है और पाप खराब, किन्तु मेरा स्वभाव अच्छा और सब विभाव खराब हैं – इसप्रकार स्वभाव-परभाव के बीच के भेद को वह नहीं जानता। वास्तव में तो पुण्य और पाप दोनों एक ही प्रकार के (विभावरूप) भाव हैं। वे दोनों आत्मा के ज्ञानानन्दस्वरूप को भूलकर निमित्त की ओर उन्मुख होनेवाले जो भाव होते हैं, उसी के प्रकार हैं। उनमें से एक भी भाव स्वभावोन्मुखी नहीं है। एक देव, शास्त्र, गुरु की ओर का शुभभाव और दूसरा स्त्री, कुटुम्ब, पैसा इत्यादि की ओर का अशुभभाव है – इन दोनों की ओर ढलते हुए भावों से अपना ज्ञान-आनन्द स्वरूप भिन्न है। इसे समझे बिना अनादि का महान भूलरूप अज्ञान दूर नहीं होता। यथार्थ ज्ञान में सच्चे देव-शास्त्र-गुरु निमित्त होते हैं। यदि सच्चे देव-शास्त्र-गुरु को निमित्तरूप न जाने तो अज्ञानी है और यदि यह माने कि उनसे अपने को लाभ होता है तो भी मिथ्यात्व है। कोई भी निमित्त मेरा कुछ कर देगा – इसप्रकार की मान्यता महा भूल है और उसका फल दुःख ही है; इसलिए निमित्त के लक्ष्य से जीव दुःखी ही होता है, सुखी नहीं होता।

इस बात को ठीक समझ लेना चाहिए कि निमित्त के लक्ष्य से दुःख है किन्तु निमित्त से दुःख नहीं है। पैसा, स्त्री इत्यादि निमित्त है, उससे जीव दुःखी नहीं, किन्तु 'यह वस्तु मेरी है, उसमें मेरा सुख है, मैं उसका कर सकता हूँ' – इसप्रकार निमित्त का आश्रय करके जीव दुःखी होते हैं। निमित्त का लक्ष्य करना, वह अपना दोष है। उपादान के लक्ष्य से परम

आनन्द होता है और निमित्त का आलम्बन दुःख ही है, इसलिए ज्ञानानन्द स्वरूप से परिपूर्ण अपने उपादान की पहचान कर उसके लक्ष्य में एकाग्रता करना, सो परम सुख है और यही मुक्ति का कारण है।

कुदेवादिक के लक्ष्य से अशुभभाव के कारण जीव दुःखी होता है, परन्तु सच्चे देव, शास्त्र, गुरु के निमित्त के लक्ष्य से शुभभाव से भी जीव दुःखी होता है, जो ऐसा कहा है तो हे उपादान ! जीव सुखी किस रीति से होता है ? इसप्रकार निमित्त पूछता है -

कहै निमित्त जो दुःख सहै, सो तुम हमहि लगाय ।

सुखी कौन तैं होत है, ताको देहु बताय ॥३४॥

अर्थ :- निमित्त कहता है - जीव जो दुःख सहन करता है, उसका दोष तू हमारे ऊपर लगाता है, किन्तु यह भी तो बताओ कि जीव सुखी किससे होता है ?

निमित्त के लक्ष्य से अशुभभाव करने से जीव दुःखी होता है, परन्तु शुभभाव करके पुण्य बाँधे तो भी जीव दुःखी होता है - ऐसा कहा है, तब फिर जीव सुखी किसप्रकार होता है ? यदि उपादान का लक्ष्य करके उसे पहचाने तो ही जीव सुखी हो। जब आत्मा सम्यग्दर्शन के द्वारा स्वभाव को पहचानकर अपने में गुण प्रकट करता है, तब अधूरी अवस्था में शुभराग आता है और जहाँ राग होता है, वहाँ पर निमित्त होता ही है; क्योंकि स्वभाव के लक्ष्य से राग नहीं होता। यदि आत्मस्वभाव की प्रतीति हो तो उस शुभराग को और शुभराग के निमित्त को (सच्चे देव, शास्त्र, गुरु इत्यादि को) व्यवहार से धर्म का कारण कहा जाये, परन्तु शुभराग, निमित्त अथवा व्यवहार आत्मा को वास्तव में लाभ करे अथवा मुक्ति का कारण हो - यह बात गलत है। राग, निमित्त और व्यवहार रहित आत्मा के शुद्ध स्वभाव की श्रद्धा-ज्ञान तथा रमणता ही मोक्ष का सच्चा कारण है।

जिस भाव से सर्वार्थसिद्धि का भव मिलता है अथवा तीर्थकर प्रकृति

का बंध होता है वह भाव स्वभाव के सुख को चूक कर होता है इसलिए दुःख ही है। जिस भाव से भव मिले और मुक्ति रुके वह भाव विकार है - दुःख है। जितने दुःख होते हैं वे सब भाव निमित्तोन्मुख होने से होते हैं। निमित्त तो परवस्तु है वह दुःख नहीं देता परन्तु स्वलक्ष्य को चूक कर परलक्ष्य से जीव दुःखी होता है। इस बात को उपादान ने दृढ़ता पूर्वक सिद्ध कर दिया है इसलिए अब निमित्त ने यह प्रश्न उठाया है कि मेरी ओर के तो सभी भावों से जीव दुःखी ही होता है तो यह बताइये कि सुखी किससे होता है।

इसके उत्तर में उपादान कहता है -

जो सुख को तू सुख कहै, सो सुख तो सुख नाहिं ।

ये सुख दुःख के मूल हैं, सुख अविनाशी माहिं ॥३५॥

अर्थ :- उपादान कहता है कि तू जिस सुख को सुख कहता है वह सुख ही नहीं है, वह सुख तो दुःख का मूल है। आत्मा के अंतरंग में अविनाशी सुख है।

पिछले दोहे में निमित्त के कहने का यह आशय था कि एक आत्मा स्व को भूलकर पर की ओर झुकाव करता है तो वह दुःखी होता है तब सुखी किसे लेकर होता है ? अर्थात् जीव पर के निमित्त के लक्ष्य से शुभभाव करके पुण्य बांधकर उसके फल में सुखी होता है इसलिए जीव को सुखी होने में भी निमित्त की सहायता आवश्यक है। इसके उत्तर में उपादान उसकी 'मूल भूल' को बतलाता है कि हे भाई ! तू जिस पुण्य के फल को सुख कहता है वह सुख नहीं है किन्तु वह तो दुःख का ही मूल है। पुण्य को और पुण्य के फल को अपना स्वरूप मानकर जीव मिथ्यात्वरूप महापाप की पुष्टि करे अनन्त संसार में दुःखी होता है इसलिए वहाँ पर पुण्य को दुःख का ही मूल कहा है। पंचेन्द्रिय के विषयों की ओर उन्मुख होना तो दुःख ही है किन्तु पंच महाव्रतों का भाव भी आस्रव है दुःख का मूल है।

स्वभाव की ओर का जो भाव है सो सुख का मूल है और निमित्त की ओर का जो भाव है सो दुःख का मूल है। उच्च से उच्च पुण्य परिणाम भी नाशवान है इसलिए पुण्य सुखरूप नहीं है आत्मा के ज्ञान, दर्शन, चारित्र ही सुखरूप हैं। श्री प्रवचनसार में स्वर्ग के सुख को गरम खौलते हुए घी के समान कहा है। जैसे घी अपने स्वभाव से तो शीतलता करनेवाला है किन्तु अग्नि का निमित्त पाकर स्वयं विकृत होने पर वही घी जलाने का काम करता है, इसीप्रकार आत्मा का अनाकुल ज्ञानस्वभाव स्वयं सुखरूप है किन्तु जब वह स्वभाव से च्युत होकर स्वयं निमित्त का लक्ष्य करता है, तब आकुलता होती है, उसमें यदि शुभराग हो तो पुण्य है और अशुभराग हो तो पाप है। परन्तु पुण्य उस खौलते हुए घी की तरह जीव को आकुलता में जलाने वाला है और पाप से तो साक्षात् अग्नि के समान नरकादि में जीव अत्यन्त दुःखी होता है, इसलिए हे निमित्त ! तू पुण्य के संयोग से जीव को सुख मानता है किन्तु उसमें सुख नहीं है, पुण्य के फल में पंचेन्द्रियों के संयोग से जीव को किस प्रकार सुख होगा ? उलटा पंचेन्द्रियों के विषय का लक्ष्य करने से जीव आकुलित होकर दुःख भोगता है। सुख तो आत्मा के अन्तर स्वभाव में है। अविनाशी ज्ञायकस्वभाव के लक्ष्य से उसकी श्रद्धा, ज्ञान और स्थिरता से ही जीव सुखी होता है, इसलिए अविनाशी उपादान स्वभाव को पहिचानकर उसके लक्ष्य में स्थिर होना चाहिए और निमित्त के लक्ष्य को छोड़ देना चाहिए। प्रथम से ही सत्य का स्वीकार करना चाहिए।

आत्मा को सुख चाहिए है, आत्मा को अपने सुख के लिए क्या किसी अन्य पदार्थ की सहायता की आवश्यकता है या अपने सुख स्वरूप की श्रद्धा-ज्ञान करके उसमें स्वयं रमण करने की आवश्यकता है ? सुखी होने के लिए पहले उसका उपाय निश्चित करना ही होगा। यह निश्चय करने के लिए यह निमित्त-उपादान का संवाद है।

यहाँ यह हजारों आत्मा आये हैं सो किसलिए ? यह सब सुख का मार्ग समझ कर सुखी होने के लिए आये हैं। कोई भी आत्मा नरक में जाने और दुःखी होने की इच्छा नहीं करता। सुख स्वाधीनता में होता है या पराधीनता में ? यदि सुख पर के आधीन हो तो वह नष्ट हो जाय और दुःख आ जाय, परन्तु सुख स्वाधीन है और वह आत्मा में ही स्वतंत्र रूप में विद्यमान है किसी परवस्तु की उपस्थिति से आत्मा को सुख मिलता है यह मान्यता गलत है, पराधीन दृष्टि है और वह महा दुःख देनेवाली है। पैसा इत्यादि से मुझे सुख मिलता है अथवा सच्चे देव-शास्त्र-गुरु से आत्मा के धर्म होता है इसप्रकार जो पर द्रव्य की आधीनता की मान्यता है सो आत्मा को अपनी शक्ति में लूला, लंगड़ा बना देनेवाली है। भला ऐसा होना किसे अच्छा लगेगा। जो जीव परवस्तु से अपने में सुख-दुःख मानता है उस जीव ने अपने को शक्तिहीन लूला, लंगड़ा मान रखा है, जिसकी दृष्टि निमित्ताधीन है वह आत्मशक्ति को नहीं पहचानता और इसीलिए वे जीव चार गति में दुःखी हो रहे हैं। जगत के जीव अपनी आत्मा की सामर्थ्य की सम्भाल नहीं करते और आत्मा को परावलंबी मानकर उससे सुख-शांति मानते हैं किन्तु वह मान्यता यथार्थ नहीं है। परावलम्बन में सुख-शांति है ही नहीं। स्वतंत्रता की यथार्थ मान्यता न हो तो उससे स्वतंत्र सुख कदापि नहीं हो सकता, इसलिए परतंत्रता की (निमित्ताधीनता की) दृष्टि में दुःख ही है। धर्म अथवा सुख तो आत्मा की पहिचान के द्वारा ही होता है।

निमित्त ने यह तर्क उपस्थित किया था कि भाई, तमाम दुःखों की पोट मेरे ऊपर रख दी है तो यह तो बताइये कि सुख-शांति कहाँ से मिलती है ? सभी प्रकार की अनुकूलता हो तो सुख हो न ? तब उपादान ने उसके तर्क का निषेध करते हुए कहा कि अनुकूल सामग्री में आत्मा का सुख है ही नहीं। 'शरीर ठीक हो' निरोगता हो, पुख्त उमर हो और भुक्त भोगी हो

यह सब पार करने के बाद मरने के समय शांतिपूर्वक धर्म होता है, इसप्रकार की महा पराधीन दृष्टि से दुःखरूप संसार है। स्वाधीनता की दृष्टि से सत्समागम प्राप्त करके अंतरंग में धर्म समझने का उपाय न करे तो उसे धर्म प्राप्त नहीं होगा और मुक्ति का उपाय नहीं मिलेगा, वह संसार में परिभ्रमण करता रहेगा। सत् को समझने के अपूर्व सुयोग के समय जो समझने से इन्कार करता है वह अपने स्वभाव का अनादर करके संयोग बुद्धि से असत् का आदर करके अनन्त संसार में दुःखी होता हुआ परिभ्रमण करता है और जिसने अन्तरंग से समझने का उल्लास प्रगट करके स्वभाव का सत्कार किया वह उपादान के बल से अल्प काल में संसार से मुक्त होकर परम सुख प्राप्त करेगा।

स्वाधीनता समझने में सुख का उपाय है तू अपनी अवस्था में भूल करता है वह भूल तुझे कोई दूसरा नहीं कराता परन्तु तूने अपने को भूलकर 'मुझे पर से सुख-दुःख होता है' इसप्रकार की विपरीत मान्यता कर रखी है इसीलिए दुःख है। तू ही भूल को करनेवाला है और तू ही भूल को मिटाने वाला है। स्वभाव को भूलकर तूने जो भूल की है उस भूल को स्वभाव की पहिचान करके दूर कर दे तो सुख तो तेरे अविनाशी स्वरूप में भरा हुआ है, वह तुझे प्रगट हो जायेगा? इसप्रकार उपादान स्वाधीनता से कार्य करता है।

निमित्त का तर्क -

अविनाशी घट घट बसे, सुख क्यों विलसत नाहिं।

शुभ निमित्त के योग बिन, परे परे बिललाहिं ॥३६॥

अर्थ :- निमित्त कहता है कि अविनाशी सुख तो घट-घट में प्रत्येक जीव में विद्यमान है, तब फिर जीवों को सुख का विलास सुख का भोग क्यों नहीं होता है? शुभ निमित्त के योग के बिना जीव क्षण-क्षण में दुःखी हो रहा है।

हे उपादान ! तू कहता है कि निमित्त से सुख नहीं मिलता और अविनाशी उपादान से ही सुख मिलता है तो सभी आत्माओं के स्वभाव में अविनाशी सुख तो है ही, तथापि वे सब उसे क्यों नहीं प्राप्त कर पाते? क्या यह सच नहीं है कि उन्हें योग्य निमित्त प्राप्त नहीं है। यदि आत्मा में ही अविनाशी सुख भरा हो तो सब जीव उसे क्यों नहीं भोगते? और जीव बाह्य सुख में क्यों झींकता रहता है? उपादान तो सबको प्राप्त है; किन्तु अनुकूल निमित्त मिलने पर ही जीव सुखी होता है। इसप्रकार निमित्त की ओर से अज्ञानियों को प्रश्न अनादि काल से चले आ रहे हैं और उपादान की पहचान के बल से उन प्रश्नों को उड़ा देनेवाले ज्ञानी भी अनादिकाल से हैं।

जिस आत्मा को स्वाधीन सुखस्वभाव की खबर नहीं है, वह इसप्रकार शंका करता है कि यदि सुख आत्मा में ही हो तो ऐसा कौन जीव है, जिसे सुख भोगने की भावना नहीं होगी और तब फिर वह सुख को क्यों नहीं भोगेगा? इसलिए सुख के लिए अनुकूल निमित्त आवश्यक है और निमित्त के आधार पर ही आत्मा का सुख है। मानव देह, आठ वर्ष का काल, अच्छा क्षेत्र, नीरोग शरीर और सत् श्रवण करनेवाला पुरुष का सत्समागम ये सब योग हो तो जीव धर्म को प्राप्त कर सुखी होता किन्तु जीव को अच्छे निमित्त नहीं मिले इसलिए सुख प्राप्त नहीं हुआ और निमित्त के अभाव में जीव एक के बाद एक दुःख भोगता रहता है, इसलिए सुख पाने के लिए जीव को निमित्त की सहायता आवश्यक है। इसप्रकार यह निमित्त का तर्क है।

उपादान का उत्तर -

शुभ निमित्त इह जीव को, मिल्यो कई भवसार।

पै इक सम्यग्दर्श बिन, भटकत फिर्यो गँवार ॥३७॥

अर्थ :- उपादान कहता है - शुभ निमित्त इस जीव को कई भवों में

मिले, परन्तु एक सम्यग्दर्शन के बिना यह मूर्ख जीव (अज्ञानभाव से) भटक रहा है।

इस दोहे में निमित्ताधीन दृष्टिवाले जीव को गँवार कहा है। जिस जीव के सम्यग्दर्शन नहीं है, वह गँवार है - अज्ञानी है। यह परम सत्य भाषा है। श्री सर्वज्ञ भगवान के पक्ष से और स्वभाव की साक्षी से अनन्त सम्यग्ज्ञानी कहते हैं कि हे भाई ! जीव को सम्यग्दर्शन के बिना सुख नहीं होता। स्वयं ही अपने सारे स्वभाव को भूल गया और पर के साथ सुख-दुःख का संबंध मान लिया; इसीलिए जीव परिभ्रमण करता है और दुःखी होता है। इस अनन्त संसार में परिभ्रमण करते हुए जीव को अच्छे-उत्कृष्ट निमित्त मिले, साक्षात् श्री तीर्थंकर भगवान उनका समवशरण (जिसमें इन्द्र, चक्रवर्ती, गणधर और सन्त मुनियों के झुण्ड के झुण्ड आते थे - ऐसी धर्म सभा) तथा दिव्यध्वनि का, जिसमें उत्कृष्ट उपदेशों की मूसलधार वर्षा होती थी - ऐसे सर्वोत्कृष्ट निमित्तों के पास अनन्त बार जाकर बैठा और भगवान की दिव्यवाणी को सुना, तथापि तू अंतरंग की रुचि के अभाव से (निमित्तों के होने पर भी) धर्म को नहीं समझा। तूने उपादान की जागृति नहीं की, इसलिए सम्यग्दर्शन प्राप्त नहीं हुआ। हे भाई ! जहाँ वस्तुस्वभाव ही स्वतंत्र है, तब फिर उसमें निमित्त क्या करेगा ? यदि जीव स्वयं अपने स्वभाव की पहचान करे तो कोई निमित्त उसे रोकने के लिए समर्थ नहीं है और यदि जीव अपने स्वभाव को न पहचाने तो कोई निमित्त उसे पहचान करा देने के लिए समर्थ नहीं है।

अनन्त काल से संसार में परिभ्रमण करते-करते प्रत्येक जीव बड़ा राजा हुआ और समवशरण में विराजमान साक्षात् चैतन्यदेव श्री अरहन्त भगवान को हीरा माणिक के थाल में कल्पवृक्षों के फल-फूलों से पूजा करते हुए इन्द्रों को देखा और स्वयं भी साक्षात् भगवान की पूजा की; किन्तु ज्ञानस्वभावी रागरहित अपने निरालम्बन आत्मस्वरूप को नहीं

समझा, इसलिए सम्यग्दर्शन प्रकट नहीं हुआ। इसीलिए गँवार होकर अज्ञान भाव से अनन्त संसार में परिभ्रमण करता रहा। भगवान भिन्न और मैं भिन्न हूँ। अपने स्वरूप से मैं भी भगवान ही हूँ ऐसी यथार्थ पहचान के बिना भगवान की पूजा करने से धर्म का लाभ नहीं होता। कहीं भगवान किसी को सम्यग्दर्शन नहीं दे देते। धर्म किसी के आशीर्वाद से नहीं मिलता, मात्र अपनी पहचान से ही धर्म होता है। इसके अतिरिक्त अन्य किसी उपाय से धर्म का आरम्भ नहीं होता।

मैं आत्मा स्वतंत्र भगवान हूँ, कोई परवस्तु मेरा कल्याण नहीं कर सकती। अपनी पहचान के द्वारा मैं ही अपना कल्याण करता हूँ। इसे समझे बिना जैन का द्रव्यलिंगी साधु हुआ, क्षमा धारण की, भगवान के पास गया, शास्त्रों को पढ़ा तथा आत्मा की रुचि और प्रतीति किए बिना अनन्त दुःखी होकर संसार में परिभ्रमण किया। यदि उपादान स्वरूप आत्मा की प्रतीति स्वयं न करे तो निमित्त क्या कर सकते हैं ? जैन का द्रव्यलिंग और भगवान तो निमित्त हैं और वास्तव में क्षमा का शुभराग तथा शास्त्र का ज्ञान भी निमित्त है। ये सब निमित्त होने पर भी अपनी भूल के कारण ही जीव को सुख नहीं होता। एक मात्र सम्यग्दर्शन के अतिरिक्त जीव को सुखी करने में कोई समर्थ नहीं है।

यदि निमित्त जीव को सुखी न करता हो और उपादान से ही सुख प्रकट होता हो तो समस्त जीवों के स्वभाव में अविनाशी सुख भरा ही है, उसे वे क्यों नहीं भोगते ? इसप्रकार निमित्त का प्रश्न है, उसके उत्तर में कहते हैं -

हे भाई ! यह सच है कि सब जीवों के स्वभाव में अविनाशी सुख है, किन्तु वह शक्तिरूप है और शक्ति का उपभोग नहीं होता; किन्तु जो जीव अपनी शक्ति की सम्हाल करते हैं, वे ही उसको भोगते हैं। यदि निमित्त से सुख प्रकट होता हो तो निमित्त तो बहुत जीवों के होता है, तथापि उन सबके

सुख क्यों प्रकट नहीं होता।

अनन्त संसार में परिभ्रमण करते हुए अनेक भवों में इस जीव को शुभ निमित्त मिले, परन्तु एक पवित्र सम्यग्दर्शन के बिना जीव अपने गँवारपन से संसार में परिभ्रमण कर रहा है। जिसे अपने स्वाधीन स्वभाव की पहचान नहीं है और जो यह मानता है कि मेरा सुख मुझे देव-शास्त्र-गुरु अथवा शुभराग इत्यादि पर निमित्त दे देंगे, उसे यहाँ पर ग्रन्थकार ने गँवार-मूर्ख कहा है। रे गँवार! तू स्वभाव को भूलकर निमित्ताधीनदृष्टि से ही परिभ्रमण करता रहा है। अपने ही दोष से तूने परिभ्रमण किया है, तू यह मानता ही नहीं कि तू स्वयं में स्वतंत्र है, इसलिए तुझे सुख का अनुभव नहीं होता। कर्मों ने तेरे सुख को नहीं दबा रखा है, इसलिए तू अपनी मान्यता को बदल दे।

निमित्ताधीन दृष्टिवाले को यहाँ गँवार कहा है। इसमें द्वेष नहीं, किन्तु करुणा है। अवस्था की भूल बताने के लिए गँवार कहा। साथ ही यह समझाया है कि भाई! तेरा गँवारपन तेरी अवस्था की भूल से है। स्वभाव से तो तू भगवान है, इसीलिए अपने स्वभाव की पहचान के द्वारा तू अपनी पर्याय के गँवारपन को दूर कर दे। जो अपनी भूल को ही स्वीकार नहीं करते और निमित्तों का ही दोष निकाला करते हैं वे अपनी भूल को दूर करने का प्रयत्न नहीं करते और इसीलिए उनका गँवारपन दूर नहीं होता। सम्यग्दर्शन के बिना मिथ्यादृष्टि होने से पागल जैसा होकर स्वभाव को भूल गया और निमित्तों की श्रद्धा की, परन्तु स्वोन्मुख होकर अपनी श्रद्धा नहीं की; इसीलिए अनन्त संसार में भव धारण करके दुःख भोग रहा है। अमुक निमित्त हो तो ऐसा हो - इसप्रकार पराधीनदृष्टि ही रखी, इसलिए सुख नहीं हुआ 'परन्तु मैं स्वतंत्र हूँ, अपने में अपने उपादान से मैं जो कुछ करूँ वह हो; मुझे रोकने में कोई समर्थ नहीं' - इसप्रकार उपादान की सच्ची समझ से पराधीनदृष्टि का नाश करते ही जीव को अपने सुख का विलास

होता है, इसलिए हे निमित्त! उपादान की जागृति से जीव को सुख होता है, जीव के सुख होने में निमित्तों की कोई भी सहायता नहीं होती। जैसे जहाँ चक्रवर्ती होता है, वहाँ चपरासी भी हाजिर ही रहते हैं, किन्तु उस पुरुष का चक्रवर्तित्व कहीं चपरासी के कारण नहीं है; इसीप्रकार जीव जब अपनी जागृति से सम्यग्दर्शनादि प्रकट करके सुखी होता है, तब निमित्त स्वयं उपस्थित होते हैं। परन्तु वे जीव के सुख के कर्ता नहीं हैं। जीव स्वयं यदि सच्ची समझ न करे तो कोई भी निमित्त उसे सुखी करने में समर्थ नहीं है।

सच्चा निमित्त मिले बिना सम्यग्ज्ञान नहीं होता अर्थात् जीव जब स्वयं ज्ञान करता है, तब सच्चे निमित्तों की उपस्थिति होती है। यदि स्वयं न समझे और ज्ञान प्रकट न करे तो सत्समागम इत्यादि के संयोग को किसी भी प्रकार निमित्त भी नहीं मान सकते। अर्थात् जीव सम्यग्ज्ञान प्रकट न करे तो निमित्त किसका? इसलिए कभी भी कोई कार्य निमित्त से नहीं होता। सभी कार्य सदा उपादान से ही होते हैं, इसलिए सुख भी उपादान की जागृति के द्वारा सम्यग्दर्शन से ही होता है।

इसप्रकार सुख जीव के सम्यग्दर्शन से ही प्रकट हो सकता है। ऐसी उपादान की बात को पात्र जीवों ने समझकर स्वीकार किया और निमित्त की हार हुई। जिज्ञासु पात्र जीव उपादान-निमित्त के संवाद से एक के बाद दूसरी बात का निर्णय करता आता है और निर्णय पूर्वक स्वीकार करता है। इसप्रकार यहाँ तक तो निमित्त की हार हुई। अब कुछ समय बाद निमित्त हार जायेगा और वह स्वयं अपनी हार को स्वीकार कर लेगा।

सम्यग्दर्शन तक तो बात यह है कि सम्यग्दर्शन से ही जीव को सुख होता है और सच्चे निमित्तों के उपस्थित होने पर भी सम्यग्दर्शन न होने के कारण ही जीव को दुःख है, सम्यग्दर्शन की बात को स्वीकार कराने के बाद अब सम्यक्चारित्र संबंधी निमित्त की ओर का तर्क यह है -

सम्यग्दर्शन भये कहा, त्वरित मुक्ति में जाहिं ?

आगे ध्यान निमित्त है, ते शिव को पहुँचाहिं ॥३८॥

अर्थ :- सम्यग्दर्शन होने से क्या जीव तत्काल मोक्ष में चला जाता है ? नहीं, आगे भी ध्यान निमित्त है, जो मोक्ष में पहुँचाता है। यह निमित्त का तर्क है।

निमित्त कहता है कि यह सच है कि सम्यग्दर्शन से ही जीव को सुख का उपाय प्रकट होता है। सम्यग्दर्शन से मुक्ति का उपाय होता है, लेकिन निमित्त के लक्ष्य से रागादि भाव से मोक्ष का उपाय नहीं होता है - इसप्रकार पंच महाव्रत की क्रिया से धर्म होता है, देव-शास्त्र-गुरु अथवा पुण्य से लाभ होता है, तीर्थंकर प्रकृति का भाव अच्छा है - इसप्रकार की विपरीत मान्यताओं का तर्क निमित्त ने अब छोड़ दिया है, किन्तु ऊपर की दशा में निमित्त का आधार है - ऐसा तर्क करता है।

सम्यग्दर्शन के बाद भी निमित्त बलवान है, मात्र सम्यग्दर्शन से ही मुक्ति नहीं हो जाती। सम्यग्दर्शन के बाद ही ध्यान करना पड़ता है, उस ध्यान में भेद का विकल्प उठता है, राग होता है; इसलिए वह भी निमित्त हुआ या नहीं ? आत्मा की यथार्थ पहिचान होने के बाद स्थिरता होने पर भले ही महाव्रतादि के विकल्प को छोड़ दे, किन्तु वस्तु को ध्यान में रखना पड़ता ही है। वस्तु में स्थिरता करते हुए राग मिश्रित विचार आये बिना नहीं रहेंगे, इसलिए राग भी निमित्तरूप हुआ या नहीं ? देखिये, निमित्त कहाँ तक जा पहुँचा ? अन्त तक निमित्त की आवश्यकता होती है। इससे सिद्ध हुआ कि निमित्त ही बलवान है। निमित्त का यह अन्तिम तर्क है।

निमित्त ने जो तर्क उपस्थित किया है, वह नय आदि के विकल्प के पक्ष का तर्क है। सम्यग्दर्शन के बाद स्थिरता करते हुए बीच में भेद का विकल्प आये बिना नहीं रहता। बीच में विकल्परूप व्यवहार आता है -

यह बात सच है, किन्तु वह विकल्प मोक्षमार्ग में किंचित्मात्र भी सहायक नहीं है; निमित्त दृष्टिवाला तो उस विकल्प को मोक्षमार्ग समझ लेता है, वही दृष्टि की 'मूल में भूल' है।

आत्मस्वभाव की दृष्टिवाला जीव अभेद के पक्ष से समझता है अर्थात् जो भेद होता है अथवा राग होता है, उसे वह जानता है; किन्तु मोक्षमार्ग के रूप में अथवा मोक्षमार्ग के सहायक के रूप में उसे वह स्वीकार नहीं करता और निमित्त को पकड़कर अज्ञानी जीव भेद के पक्ष से बात करता है। उसे अभेद स्वभाव का भान नहीं है, इसलिए वह मानता है कि ध्यान करते हुए बीच में भेद भंग का विकल्प आये बिना नहीं रहता; इसलिए वह विकल्प ही ध्यान में सहायक है। इसप्रकार ज्ञानी और अज्ञानी की दृष्टि में ही अन्तर है।

स्वाश्रय सन्मुख होकर ज्ञान में एकाग्र होना ध्यान है, एक गुण को लक्ष्य में लेकर विचार करना, सो भेद भंग है। यह भेद भंग बीच में आता ही है, इसलिए उस भेद के राग की सहायता से ही मोक्ष होता है। यह निमित्त का तर्क है। इस तर्क में पर से कोई संबंध नहीं रखा। अब तो भीतर जो विकल्परूप व्यवहार बीच में आता है, उस व्यवहार को जो अज्ञानी मोक्षमार्ग के रूप में मानता है, उसी का यह तर्क है।

उपादान निमित्त के तर्क का खण्डन करता है -

छोर ध्यान की धारणा, मोर योग की रीत।

तोरि कर्म के जाल को, जोर लई शिव प्रीत ॥३९॥

अर्थ :- उपादान कहता है कि ध्यान की धारणा को छोड़कर, योग की रीत को समेट कर, कर्म जाल को तोड़कर जीव अपने पुरुषार्थ के द्वारा शिव पद की प्राप्ति करते हैं।

हे निमित्त ! जो भेद का विकल्प उठता है, उसे तू मोक्ष का कारण कहता है, किन्तु वह तो बन्ध का कारण है। जब जीव उस विकल्प को

छोड़ता है, तभी मोक्ष होता है। सम्यग्दर्शन के बाद ध्यान का विकल्प उठता है, उसे छोड़कर मुक्ति होती है। उस विकल्प को रखकर कभी भी मुक्ति नहीं हो सकती। ध्यान की धारणा को छोड़कर अर्थात् स्वभाव में स्थिर होऊँ – ऐसा जो विकल्प उठता है; उसे छोड़कर अभेद स्वरूप में स्थिर होने पर केवलज्ञान और मोक्ष होता है। इसलिए मात्र उपादान के बल से ही कार्य होता है, निमित्त से कार्य नहीं होता। यहाँ पर उपादान को निश्चय और निमित्त को व्यवहार के रूप में लिया है। स्वभाव में एकाग्रतारूप अभेद परिणति निश्चय है; वही उपादान है, वही मोक्ष का कारण है और जो भेदरूप विकल्प उठता है, वह व्यवहार है, निमित्त है; वह मोक्ष का कारण नहीं है। ध्यान की धारणा को छोड़ने से केवलज्ञान होता है तथा केवलज्ञान होने के बाद भी मन, वचन, काय के योग का जो कंपन होता है, वह भी मोक्ष का कारण नहीं है। उस योग की क्रिया को तोड़-मरोड़कर मोक्ष होता है।

मन, वचन, काया के विकल्प को तोड़-मरोड़कर स्वरूप के भीतर पुरुषार्थ करके राग से छूट कर अभेद स्वरूप में स्थिर होने पर केवलज्ञान और अन्त में मुक्ति होती है।

उपादान ने स्वभाव की ओर से तर्क उपस्थित करके निमित्त के पराधीनता के तर्क को खण्डित कर दिया है। इसप्रकार ३९ दोहों तक उपादान और निमित्त ने परस्पर तर्क उपस्थित किये। उन दोनों के तर्कों को बराबर समझकर सम्यग्ज्ञानरूपी न्यायाधीश अपना निर्णय देता है कि उपादान आत्मा की ओर से स्वाश्रित बात करनेवाला है और निमित्त आत्मा को पराश्रित बतलाता है। इनमें से आत्मा को और प्रत्येक वस्तु को स्वाधीनता बतानेवाले उपादान की बात बिलकुल सच है और आत्मा को तथा प्रत्येक वस्तु को पराधीन बतानेवाले निमित्त की बात बिलकुल गलत है। इसलिए निमित्त को पराजित घोषित किया जाता है।

निमित्त पक्षवाले की ओर से अन्तिम अपील की जाती है कि निमित्त की बात गलत क्यों है और निमित्त कैसे पराजित हो गया ? देखिये, जब लोग धर्मसभा में एकत्रित होकर सत्समागम प्राप्त करते हैं, तब उनके अच्छे भाव होते हैं और जब वे घर पर होते हैं तो ऐसे अच्छे भाव नहीं होते। अच्छा निमित्त मिलने से अच्छे भाव होते हैं और जब वे घर पर होते हैं तो ऐसे अच्छे भाव नहीं होते। अच्छा निमित्त मिलने से अच्छे भाव होते हैं, इसलिए निमित्त का कुछ बल तो स्वीकार करना ही चाहिए।

उपादान इस अपील का खण्डन करता हुआ कहता है कि स्वतः बदलने से अपने भाव बदलते हैं, निमित्त को लेकर किसी के भाव नहीं बदलते। उपादान के कार्य में निमित्त का अंशमात्र भी बल नहीं है। उपादान के कार्य में तो निमित्त की नास्ति है। बाहर ही वह लोटता रहता है किन्तु वह उपादान में प्रवेश नहीं कर सकता और वह दूर से भी कोई असर, मदद और प्रेरणा नहीं कर सकता। यदि कोई यह कहे कि – “निमित्त-उपादान का कुछ भी नहीं करता, परन्तु जैसा निमित्त होता है, तदनुसार उपादान स्वयं परिणमन करता है” तो यह बात भी बिलकुल गलत और वस्तु को पराधीन बतानेवाली है। निमित्तानुसार उपादान परिणमन नहीं करता, किन्तु उपादान स्वयं अपनी शक्ति से स्वाधीनतया परिणमन करता है, योग्यतानुसार कार्य करता है।

सत्समागम के निमित्त का संयोग हुआ, इसलिए आपके भाव सुधर गये यह बात नहीं है। सत्समागम का निमित्त होने पर भी किसी जीव को अपने भाव में सच्ची बात नहीं बैठती और उलटा वह सत् का विरोध करके दुर्गति में जाता है; क्योंकि उपादान के भाव स्वतंत्र हैं। सत् निमित्त की संगति होने पर भी यदि उपादान स्वयं जागृति न करे तो सत्य को नहीं समझा जा सकता और जो सत्य को समझते हैं, वे सब अपने उपादान की जागृति करके ही समझते हैं। श्री भगवान के समवशरण में करोड़ों जीव भगवान की वाणी सुनते हैं, वहाँ पर वाणी सबके लिए एक-सी होती है।

फिर जो जीव अपने उपादान की जागृति करके जितना समझते हैं, उन जीवों के उतना ही निमित्त कहलाता है। कोई बारह अंग का ज्ञान करता है तो उसके बारह अंगों के लिए भगवान की वाणी का निमित्त कहलाता है और कोई किंचित्मात्र भी नहीं समझता तो उसके लिए किंचित् भी निमित्त नहीं कहलाता। कोई उलटा समझता है तो उसकी उलटी समझ में निमित्त कहलाता है। इससे सिद्ध होता कि उपादान स्वाधीन रूप में ही कार्य करता है, निमित्त तो मात्र आरोपरूप ही है। भगवान के पास सच्चे गुरु के पास अनन्त बार गया, किन्तु स्वयं जागृत होकर अपने भीतर से भूल को दूर करे तभी तो आत्मा को समझेगा ? कोई देव-शास्त्र-गुरु उसके आत्मा में प्रवेश करके भूल को बाहर तो नहीं निकाल देंगे।

जैसे सिद्ध भगवान के ज्ञान के परिणामन में लोकालोक निमित्त है, किन्तु क्या सिद्ध भगवान का ज्ञान लोकालोक के किसी पदार्थ परिणामन कराते हैं अथवा उनका कोई असर भगवान पर होता है, ऐसा तो कुछ नहीं होता। इसप्रकार सिद्ध भगवान के ज्ञान की तरह सर्वत्र समझ लेना चाहिए कि निमित्तमात्र उपस्थितिरूप है, वह किसी को परिणामन नहीं कराता अथवा उपादान पर उसका किंचित्मात्र भी असर नहीं होता; इसलिए उपादान की ही विजय है। प्रत्येक जीव अपने-अपने अकेले स्वभाव के आवलम्बन से ही धर्म को पाते हैं, कोई भी जीव परावलम्बन से धर्म को प्राप्त नहीं करता।

(यहाँ पर यही प्रयोजन है कि जीव की मुक्ति हो, इसलिए मुख्यतया जीव के धर्म पर ही उपादान निमित्त के स्वरूप को घटित किया है; परन्तु तदनुसार ही जीव अपना अधर्मभाव ही अपनी उपादान की योग्यता से करता है और जगत की समस्त जड़ वस्तुओं की क्रिया भी उन-उन जड़ वस्तुओं के उपादान से होती है। शरीर का हलन-चलन, शब्दों का बोला या लिखा जाना - यह सब परमाणु के ही उपादान से होता है, वहाँ

निमित्त होने पर भी निमित्त उसमें कुछ नहीं करता - इसीप्रकार सर्वत्र समझ लेना चाहिए।)

पराजय की स्वीकृति

अब यहाँ पर सब बातों को स्वीकार करके निमित्त अपनी पराजय स्वीकार करता है -

तब निमित्त हार्यो तहाँ, अब नहिं जोर बसाय।

उपादान शिव लोक में, पहुँच्यो कर्म खपाय ॥४०॥

अर्थ :- तब निमित्त हार गया। अब कुछ जोर नहीं करता और उपादान कर्म का क्षय करके शिवलोक में (सिद्धपद में) पहुँच गया।

उपादान-निमित्त के संवाद से अनेकप्रकार आत्मा के स्वतंत्रता के स्वरूप की प्रतीति करके उपादान पक्षवाला जीव अपनी सहज शक्ति को प्रकट करके मुक्ति में अकेला शुद्ध संयोग रहित शुद्धरूप में रह गया। जो अपने स्वभाव से शुद्ध रहा, उसने अपने में से ही शुद्धता प्राप्त की है; किन्तु जो राग-विकल्प इत्यादि छूट गये हैं और उसमें से शुद्धता को प्राप्त नहीं किया। कर्म का और विकार भाव आदि का नाश करके तथा मनुष्य देह, पाँच इन्द्रियाँ और देव, शास्त्र, गुरु इत्यादि सबका संग छोड़कर उपादान स्वरूप की एकाग्रता के बल से जीव ने अपनी शुद्धदशा को प्राप्त कर लिया।

प्रश्न : इस दोहे में लिखा है कि “अब नहिं जोर बसाय” अर्थात् जीव सिद्ध होने के बाद निमित्त का कुछ वश नहीं चलता, किन्तु जीव की विकारदशा में तो निमित्त का जोर चलता है न ?

उत्तर : नहीं, निमित्त तो परवस्तु है। आत्मा के ऊपर पर वस्तु का जोर कदापि चल ही नहीं सकता, किन्तु जीव पहले अज्ञानदशा में निमित्त का बल मान रहा था और अब यथार्थ प्रतीति होने पर उसने उपादान-

निमित्त दोनों को स्वतंत्रतया जान लिया और अपनी स्वतंत्र शक्ति सम्हालकर स्वयं सिद्धदशा प्रकट कर ली। निमित्त हार गया, इसका मतलब यह है कि अज्ञानदशा में निमित्त की दृष्टि थी। ज्ञानदशा के प्रकट होने पर अज्ञान का नाश हो गया और निमित्तदृष्टि दूर हो गई, इसलिए यह कहा गया है कि निमित्त हार गया।

इसप्रकार निमित्ताधीनदृष्टि का नाश होने पर उपादान को अपने में क्या लाभ हुआ ? यह बतलाते हैं -

उपादान जीत्यो तहाँ, निजबल कर परकाश।

सुख अनन्त ध्रुव भोगवे, अन्त नवरन्यो तास ॥४१॥

अर्थ :- इसप्रकार निज का बल प्रकाश कर उपादान जीता। (वह उपादान अब) उस अनन्त ध्रुव सुख को भोगता है, जिसका अंत नहीं है।

आत्मा का स्वभाव शुद्ध ध्रुव अविनाशी है। उस स्वभाव के बल से उपादान ने अपने केवलज्ञान का प्रकाश किया है और अब वह स्वाधीनता से अनन्त ध्रुव सुख को भोग रहा है। पहले निमित्ताधीन दृष्टि से पराधीनता के कारण (पर लक्ष्य करके) दुःख भोग रहा था और अब स्वभाव को पहचानकर उपादानदृष्टि से स्वाधीनतया शुद्धदशा में अनन्तकाल के लिए सुखानुभव कर रहा है। सिद्धदशा होने के बाद समय-समय पर स्वभाव में से ही आनन्द का भोग किया करता है। अपने सुख के लिए जीव को शरीर, पैसा इत्यादि परद्रव्य की आवश्यकता नहीं है; क्योंकि उन किसी के न होने पर भी सिद्ध भगवान स्वाधीनतया सम्पूर्ण सुखी हैं।

देखिये, यहाँ कहा है कि उपादान ने अपने बल का प्रकाश करके सुख प्राप्त किया है। अपने में जो शक्ति थी, उसे पहचानकर उसके द्वारा उस बल को प्रकट करके ही सुख प्राप्त हुआ है। किसी निमित्त की सहायता से सुख प्राप्त नहीं किया।

अब तत्त्व स्वरूप को कहते हैं, उसमें बड़ा सुन्दर न्याय है -

उपादान अरु निमित्त ये, सब जीवन पै वीर।

जो निजशक्ति सँभार ही, सो पहुँचे भव तीर ॥४२॥

अर्थ :- उपादान और निमित्त - ये सभी जीवों के हैं, किन्तु जो वीर अपनी उपादान शक्ति की सम्हाल करते हैं, वे भव के पार को प्राप्त होते हैं।

सभी जीव भगवान हैं और अनन्त गुणवाले हैं। सभी आत्माओं की उपादान शक्ति समान है और सभी जीवों के बाह्य निमित्त भी हैं। इसप्रकार उपादान और निमित्त दोनों त्रिकाल सभी जीवों के हैं। ऐसा कोई आत्मा नहीं है, जिसमें उपादान शक्ति की पूर्णता न हो तथा ऐसा कोई आत्मा नहीं है कि जिसको निमित्त न हो। जैसा कार्य जीव स्वयं करता है, उससमय उसे अनुकूल निमित्त होता ही है। निमित्त होता अवश्य है, किन्तु उपादान के कार्य में कुछ करता नहीं है। उपादान और निमित्त दोनों अनादि-अनन्त हैं। जो अपने उपादान की जागृति करके धर्म समझते हैं उनके सत् निमित्त होता है और जो जीव धर्म को नहीं समझते, उनके कर्म वगैरह निमित्त कहलाते हैं। सिद्धों के परिणामन इत्यादि में काल, आकाश आदि का निमित्त है और ज्ञान में ज्ञेय के रूप में सारा जगत निमित्त है। किसी भी जगह अकेला उपादान नहीं होता; क्योंकि ज्ञान स्व-पर को जानने की शक्तिवाला है, इसलिए वह उपादान और निमित्त दोनों को जानता है। यदि उपादान और निमित्त दोनों को न जाने तो ज्ञान असत् कहलायेगा, तथापि ध्यान रहे कि उपादान और निमित्त दोनों स्वतंत्र पदार्थ हैं। वे एक-दूसरे का कुछ नहीं कर सकते। उपादान और निमित्त दोनों वस्तुएँ अपने अस्तित्व में हैं। जो जीव अपनी उपादान शक्ति को सम्हालता है उसी को सम्यग्दर्शनादि गुण प्रकट होकर मोक्ष होता है, किन्तु जो जीव उपादान को भूलकर निमित्त की ओर लक्ष्य करता है, वह अपनी शक्ति को भूलकर पर से भीख माँगनेवाला चौरासी का भिखारी है। पर लक्ष्य से वह भिखारीपन दूर नहीं होता और जीव सुखी नहीं हो सकता। यदि अपने स्वभाव की

स्वाधीनता को प्रतीति में ले तो सर्व पर द्रव्यों का मुँह देखना दूर हो जाये और स्वभाव का स्वाधीन आनन्द प्रकट हो।

जब स्व लक्ष्य करके शक्ति की सम्हाल की, तब वह शक्ति प्रकट हुई अर्थात् सुख हुआ। उपादान शक्ति तो त्रिकाल है, वह मुक्ति का कारण नहीं, किन्तु उपादान शक्ति की सम्हाल मुक्ति का कारण है। उपादान शक्ति की सम्हाल ही दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप मोक्षमार्ग है। पहले उपादान स्वभाव की श्रद्धा की कि मैं स्वयं अनन्त गुण शक्ति का पिण्ड हूँ, पर से पृथक् हूँ, मुझे पर से कुछ भी नहीं लेना है, किन्तु मेरे स्वभाव में से ही प्रकट होता है - ऐसी प्रतीति और ज्ञान करके उस स्वभाव में स्थिरता करना - सो उपादान शक्ति की सम्हाल है और वही मोक्ष का कारण है।

उपादान कारण और निमित्त कारण दोनों पर्यायरूप हैं, द्रव्य-गुण त्रैकालिक हैं, उसमें निमित्त नहीं होता। त्रैकालिक शक्ति उपादान है और उस त्रैकालिक शक्ति की वर्तमान पर्याय उपादान कारण है। उपादान कारण अपनी पर्याय में कैसा कार्य करता है और उससमय किसप्रकार का पर संयोग होता है - यह बताने के लिए परवस्तु को निमित्त कारण कहा गया है। पर-वस्तु को निमित्त कहकर उसका ज्ञान कराया है, क्योंकि ज्ञान की शक्ति स्व-पर को जानने की है, परन्तु परद्रव्य का कोई भी बल बताने के लिए उसे निमित्त कहा गया है।

जहाँ यह कहा जाता है कि 'जीव ने ज्ञानावरणी कर्म का बंध किया है', वहाँ वास्तव में यह बताने का आशय है कि जीव ने अपनी पर्याय में ज्ञान की हीनता की है; परन्तु 'जीव जड़ परमाणुओं का कर्ता है' - यह बताने का आशय नहीं है।

प्रश्न : उपादान तो सभी जीवों के त्रिकाल है - यह बात इस दोहे में बताई गयी और इस संवाद में यह भी कहा गया है कि मात्र उपादान की शक्ति से ही कार्य होता है। यदि मात्र उपादान से ही कार्य होता हो तो

अनन्तकाल से उपादान होने पर भी पहले कभी शुद्ध कार्य प्रकट नहीं किया था; किन्तु तब फिर आज ही प्रगट करने का क्या कारण है ?

उत्तर : जो त्रिकाल उपादान है, वह तो द्रव्यरूप है। वह सब जीवों के है, परन्तु कार्य तो पर्याय में होता है। जब जो जीव अपनी उपादान शक्ति को सँभालता है, तब उस जीव के शुद्धता प्रकट हो जाती है। द्रव्य की शक्ति त्रिकाल है, किन्तु जब स्वयं परिणति जागृत की, तब वह शक्ति पर्यायरूप व्यक्त हो गई। जब स्वयं स्वोन्मुखी रुचि और अपनी ओर के भाव के द्वारा अपनी परिणति को जागृत करता है, तब होती है; उसमें कोई कारण नहीं अर्थात् वास्तव में द्रव्य-गुण अकारणीय है, उसीप्रकार शुद्ध अथवा अशुद्ध पर्याय अकारणीय है। शुद्ध अथवा अशुद्ध पर्याय को उससमय में स्वयं स्वतः करता है, उसमें पूर्वापर की दशा अथवा कोई परद्रव्य वास्तविक कारण नहीं है। पर्याय का कारण पर्याय स्वयं ही है, पर्याय अपनी शक्ति से जिस समय जागृत होती है, उससमय जागृत हो सकती है। जिस पर्याय में जितना स्वभाव की ओर का बल होता है (अर्थात् जितने अंश में स्व-समय रूप परिणमन करता है) उस पर्याय में उतनी शुद्धता होती है, कारण-कार्य एक ही समय में अभेद है। यहाँ पर प्रत्येक पर्याय में पुरुषार्थ की स्वतंत्रता बताई गई है। पहली पर्याय के मिथ्यात्व रूप होने पर भी दूसरे समय में स्वरूप की प्रतीति करके सम्यक्त्व रूप पर्याय प्रकट हो सकती है। यहाँ कोई पूछ सकता है कि जो सम्यक्त्व पहली पर्याय में नहीं था, वह दूसरी पर्याय में कहाँ से आयेगा ? इसका उत्तर यह है कि उससमय की पर्याय को स्वतंत्र सामर्थ्य प्रकट होने से सम्यक्त्व हुआ है, पूर्व पर्याय नई पर्याय की कर्ता नहीं है, परन्तु नई प्रकट होनेवाली अवस्था स्वयं ही अपने पुरुषार्थ की योग्यता से सम्यक्त्वरूप हुई है, जिस समय पुरुषार्थ करता है, उस समय सम्यग्दर्शन प्रकट होता है, उसमें कोई कारण नहीं है। पर्याय का पुरुषार्थ स्वयं ही सम्यग्दर्शन का कारण है और वह पर्याय द्रव्य में से प्रकट होती है; इसलिए अभेद विवक्षा

से द्रव्य स्वभाव ही सम्यग्दर्शन का कारण है।

उपादान की महिमा

भैया महिमा ब्रह्म की, कैसे वरनी जाय ?

वचन अगोचर वस्तु है, कहिवो वचन बताय ॥४३॥

अर्थ :- ग्रन्थकार भैया भगवतीदासजी आत्मस्वभाव की महिमा का वर्णन करते हुए कहते हैं कि भाई ! ब्रह्म की (आत्मस्वभाव की) महिमा का वर्णन कैसे किया जा सकता है ? वह वस्तु वचन अगोचर है, उसे किन वचनों के द्वारा बताया जा सकता है ?

जो जीव वस्तु के स्वतंत्र उपादानस्वभाव को समझता है, उसे उस स्वभाव की महिमा प्रकट हुए बिना नहीं रहती। अनादि-अनन्त सम्पूर्ण स्वतंत्रता से वस्तु टिक रही है, ऐसे वस्तुस्वभाव का वचन से कैसे वर्णन किया जा सकता है, वचन से उसकी महिमा का पार नहीं आ सकता। ज्ञान के द्वारा ही उसकी यथार्थ महिमा जानी जा सकती है। स्वभाव की महिमा बहुत है, वह वचन से परे है; फिर भी उसे वचन के द्वारा कहना, सो पूरा कैसे कहा जा सकता है ? इसलिए हे भाई ! तू अपनी ज्ञान सामर्थ्य के द्वारा अपने स्वभाव को समझ। यदि तू स्वयं समझे तो अपने स्वभाव का पार पाये। एक ही समय में अनादि संसार का नाश करके जिसके बल से परम पवित्र परमात्मदशा प्रकट होती है - ऐसे भगवान आत्मा के स्वभाव की महिमा को हम कहाँ तक कहें। हे भव्यजीवो ! तुम स्वयं स्वभाव को समझो।

अब ग्रन्थकार इस संवाद की सुन्दरता को बतलाते हैं और यह भी बतलाते हैं कि इस संवाद से ज्ञानी और अज्ञानी को किसप्रकार का अभिप्राय होगा -

उपादान अरु निमित्त को, सरस बन्यौ संवाद।

समदृष्टि को सरल है, मूर्ख को बकवाद ॥४४॥

अर्थ :- उपादान और निमित्त का यह सुन्दर संवाद बना है। यह सम्यग्दृष्टि के लिए सरल है और मूर्ख (मिथ्यादृष्टि) के लिए बकवाद मालूम होगा।

उपादान-निमित्त के सच्चे स्वरूप को बतानेवाला आत्मा के सहज स्वतंत्र स्वभाव का यह वर्णन बहुत ही अच्छा है। जो जीव वस्तु के स्वाधीन स्वरूप को समझते हैं, उन सच्ची दृष्टिवाले जीवों के लिए तो वह सुगम है। वे ऐसी वस्तु की स्वतंत्रता को समझकर आनन्द करेंगे, किन्तु जिसे वस्तु की स्वतंत्रता की प्रतीति नहीं होती और जो आत्मा को पराधीन मानता है, वह वस्तु के स्वतंत्र स्वभाव की महिमा को नहीं जान सकता। ज्ञानी वस्तु को भिन्न-भिन्न और स्वभाव से देखते हैं, किन्तु अज्ञानी संयोगबुद्धि से देखते हैं; इसलिए वह संयोग से कार्य होता है - इसप्रकार मिथ्या मानते हैं, परन्तु इस बात को ज्ञानी ही यथार्थरीत्या जानते हैं कि वस्तु पर से भिन्न असंयोगी है और उसका कार्य भी स्वतंत्र अपनी शक्ति से ही होता है। अज्ञानी को तो ऐसा लगेगा कि भला यह किसकी बात है ? भला, क्या आत्मा को कोई सहायता नहीं कर सकता, किन्तु भाई ! यह बात तेरे ही स्वरूप की है। निज स्वरूप की प्रतीति के बिना अनादि काल से दुःख में परिभ्रमण कर रहा है, तेरा यह परिभ्रमण कैसे दूर हो और सच्चा सुख प्रकट होकर मुक्ति कैसे हो ? - यह बताया जाता है। संयोगबुद्धि से परपदार्थों को सहायक मानकर तू अनादि काल से परिभ्रमण कर रहा है। अब तुझे तेरा पर से भिन्न स्वाधीन स्वरूप बतलाकर ज्ञानीजन उस विपरीत मान्यता को छोड़ने का उपदेश देते हैं।

ज्ञानीजन तुझे कुछ देते नहीं हैं। तू ही अपना तारनहार है, तेरी असमझ से ही तेरा बिगाड़ है और सच्ची समझ से ही तेरा सुधार है। यदि जीव अपनी इस स्वाधीनता को समझ ले तो उसे अपनी महिमा ज्ञात हो जाये, किन्तु जिसे अपनी स्वाधीनता समझ में नहीं आती, उसे यह संवाद

केवल बकवाद रूप मालूम होगा। जो जिसकी महिमा को जानता है, वह तत्संबंधी बात को बड़े ही चाह से सुनता है; परन्तु जिसकी महिमा को नहीं जानता है, उसकी बात नहीं रुचती। इस संबंध में यहाँ एक दृष्टान्त दिया जाता है -

पहले जमाने में जब बेलदार लोग सारे दिन मजूदरी करके घर आते और सब एकत्रित होकर बैठते, तब उससमय उनका पुरोहित उन्हें उनके बाप दादाओं की पुरानी कथा सुनाता हुआ कहने लगता कि तुम्हारी चौथी पीढ़ी का बाप तो बहुत बड़ा राज्याधिकारी था। बेलदार लोग तो सारे दिन मजूदरी करने से थके होते थे, इसलिए जब पुरोहित उनके बाप-दादाओं की बात करता, तब वे झोके खाने लगते और पुरोहित से कहने लगते कि “हाँ बापू! कहते जाइये” जब बेलदार लोग सुनने पर ध्यान नहीं देते तो पुरोहित कहता कि अरे, जरा सुनो तो, मैं तुम्हारे बाप-दादाओं की बड़प्पन की बात कह रहा हूँ, तब बेलदार लोग कहते कि हाँ महाराज! कहते जाइये अर्थात् आप तो अपनी बात कहते जाइये, तब पुरोहित कहता कि अरे भाई! यह तो तुम्हें सुनाने के लिए कह रहा हूँ, मुझे तो सब मालूम ही है।

इसीप्रकार यहाँ पर संसार की थकान से थके हुए जीवों को ज्ञानी गुरु उनके स्वभाव की अपूर्व महिमा बतलाते हैं, परन्तु जिसे स्वभाव की महिमा की खबर नहीं है और स्वभाव की महिमा की रुचि नहीं है। उन बेलदार जैसे जीवों को स्वभाव की महिमा सुनने की उमंग नहीं होती अर्थात् उनके लिए क्या तो उपादान और क्या निमित्त और क्या वस्तु की स्वतंत्रता - यह सब बकवाद-सा ही मालूम होता है। वे सब आत्मा की परवाह न करनेवाले बेलदारों की तरह संसार के मजदूर हैं। ज्ञानी कहते हैं कि हे भाई! तेरा स्वभाव क्या है? विकार क्या है? और वह विकार कैसे दूर हो सकता है? - यह तुझे समझाते हैं। इसलिए तू अपनी स्वभाव की महिमा

को जानकर विवेकपूर्वक समझ तो तेरा संसारपरिभ्रमण का दुःख दूर हो जायेगा और तुझे शान्ति प्राप्त होगी, यह तेरे ही सुख के लिए कहा जा रहा है और तेरे ही स्वभाव की महिमा बतलाई जा रही है, इसलिए तू ठीक निर्णय करके समझ। जो जीव जिज्ञासु है, उसे श्री गुरु की ऐसी बात सुनकर अवश्य ही स्वभाव की महिमा प्रकट होती है और वह बराबर निर्णय करके अवश्य समझ लेता है।

जिज्ञासु जीवों को इस उपादान-निमित्त के स्वरूप को समझने में दुर्लक्ष्य नहीं करना चाहिए। इसमें महान सिद्धान्त निहित है। इसे ठीक समझकर इसका निर्णय करना चाहिए। उपादान-निमित्त की स्वतंत्रता का निर्णय किए बिना कदापि सम्यग्दर्शन नहीं होता।

अब अन्त में ग्रन्थकार कहते हैं कि जो आत्मा के गुण को पहचानता है, वही इस संवाद के रहस्य को जानता है -

जो जानै गुण ब्रह्म के, सो जानै यह भेद।

साख जिनागम सो मिलै, तो मत कीज्यो खेद ॥४५॥

अर्थ :- जो जीव आत्मा के गुण को (स्वभाव को) जानते हैं, वे इस (उपादान-निमित्त के संवाद के) रहस्य को जानते हैं। उपादान-निमित्त के इस स्वरूप की साक्षी श्री जिनागम से मिलती है, इसलिए इस सम्बन्ध में खेद नहीं करना चाहिए, शंका नहीं करना चाहिए।

उपादान और निमित्त दोनों पदार्थ त्रिकाल हैं, दोनों में से एक भी अभावरूप नहीं है। सिद्धदशा में भी आकाश इत्यादि निमित्त है। अरे! ज्ञान की अपेक्षा से समस्त लोकालोक निमित्त है। जगत में स्व और पर पदार्थ हैं और ज्ञान का स्वभाव स्व-पर प्रकाशक ज्ञायक है; इसलिए यदि ज्ञान स्व-पर को भिन्न-भिन्न और स्वतंत्र न जाने तो वह मिथ्याज्ञान है, इसलिए स्व और पर को जैसा का तैसा जानना चाहिए। उपादान को स्व के रूप में और निमित्त को पर के रूप में जानना ठीक है। दोनों को जो

जैसे हैं, उन्हें उनके गुणों के द्वारा जानकर अपने उपादान स्वभाव को पहचानकर निरन्तर अपने शुद्ध उपादान का आलम्बन (आश्रय) करना चाहिए।

१. उपादान-निमित्त को जान लेना चाहिए, किन्तु यह नहीं समझना चाहिए कि निमित्त के कारण उपादान में कोई कार्य होता है अथवा निमित्त-उपादान का कोई कार्य कर सकता है।

२. मात्र उपादान से ही कार्य होता है, निमित्त कुछ नहीं करता, इसलिए निमित्त कुछ है ही नहीं - यह भी नहीं मानना चाहिए।

३. निमित्त को जानना तो चाहिए, किन्तु वह उपादान से भिन्न पदार्थ है; इसलिए वह उपादान में किसी भी प्रकार की सहायता अथवा असर नहीं कर सकता - इसप्रकार समझना, सो सम्यग्ज्ञान है। यदि निमित्त की उपस्थिति के कारण कार्य का होना माने तो वह मिथ्याज्ञान है।

इसप्रकार इस संवाद के द्वारा यह सिद्ध किया गया है कि उपादान वस्तु की निजशक्ति है और पर संयोग निमित्त है। निमित्त जीव का (उपादान का) कुछ भी कार्य नहीं करता, किन्तु उपादान स्वयं ही अपना कार्य करता है। सारे संवाद में कहीं भी यह बात स्वीकार नहीं की गई है कि निमित्त से कार्य होता है। विपरीतदशा में विकार भी जीव स्वयं ही करता है, निमित्त विकार नहीं कराता; परन्तु इस संवाद में मुख्यतः औचित्य की बात ली गई है। सम्यग्दर्शन से सिद्धदशा तक जीव की ही शक्ति से कार्य होता है - यह सिद्ध किया गया है, किन्तु निमित्त की बलवत्ता कहीं भी नहीं मानी गई है। इससे यदि कोई जीव अपनी नासमझी के कारण यह मान बैठे कि यह तो एकान्त हो गया, सर्वत्र उपादान से ही कार्य हो और निमित्त से कहीं भी न हो - इसमें अनेकान्तपन कहाँ है ? तो ग्रन्थकार कहते हैं कि इसमें स्वतंत्र वस्तुस्वभाव सिद्ध किया है और निमित्त का पक्ष नहीं किया। (निमित्त का यथार्थ ज्ञान है) इसलिए खेद नहीं करना चाहिए,

किन्तु उत्साहपूर्वक समझकर इस बात को स्वीकार करना चाहिए; क्योंकि इस बात की साख श्री जिनागम से मिलती है।

श्री जिनागम वस्तु को सदा स्वतंत्र बतलाता है। वस्तुस्वरूप ही स्वतंत्र है। जिनेन्द्रदेव का प्रत्येक वचन पुरुषार्थ की जागृति की वृद्धि के लिए ही है। यदि जिनेन्द्रदेव के एक भी वचन में से पुरुषार्थ को गौण करने का आशय निकाला जाये तो मानना चाहिए कि वह जीव जिनेन्द्रदेव के उपदेश को समझा ही नहीं है। निमित्तों का और कर्मों का ज्ञान पुरुषार्थ में अटक जाने के लिए नहीं कहा है, किन्तु निमित्तरूप पर वस्तुएँ हैं और जीव के परिणाम भी उसके पक्ष से अनेक प्रकार विकारी होते हैं - यह जानकर अपने निज परिणाम की सँभाल करने के लिए निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध का ज्ञान कराया है। वह ज्ञान सत्य पुरुषार्थ की वृद्धि के लिए ही है, किन्तु जो जीव यह कहता है कि 'तीव्र कर्मोदय आकर मुझे हैरान करेगा तो मेरा पुरुषार्थ नहीं चल सकेगा', उस जीव को स्वयं पुरुषार्थ नहीं करना है; इसीलिए वह पुरुषार्थ हीनता की बातें करता है। अरे भाई ! पहले जब तुझे कर्मों की खबर नहीं थी, तब तू ऐसा तर्क नहीं करता था और अब कर्मों का ज्ञान होने पर तू पुरुषार्थ की शंका करता है तो क्या अब निमित्त का यथार्थ ज्ञान होने से तुझे हानि होगी, इसलिए हे जीव ! निमित्त कर्मों की ओर का लक्ष्य छोड़कर तू अपने ज्ञान को उपादान के लक्ष्य में लगाकर सच्चा पुरुषार्थ कर। तू जितना पुरुषार्थ करेगा, उतना काम आयेगा। तेरे पुरुषार्थ को रोकने के लिए विश्व में कोई समर्थ नहीं है। जगत में सब कुछ स्वतंत्र है। रजकण से लेकर सिद्ध तक सभी जड़-चेतन पदार्थ स्वतंत्र हैं। एक पदार्थ का दूसरे पदार्थ के साथ किंचित्मात्र भी संबंध नहीं है, तब फिर किसी भी निमित्तरूप पदार्थ हों, वे उपादान का क्या कर सकते हैं ? उपादान स्वयं जिसप्रकार परिणामन करता है, उसप्रकार

पर पदार्थ में निमित्तारोप होता है। निमित्त तो आरोप मात्र कारण ही है, उसकी उपादान में तीनों काल नास्ति है और अस्ति-नास्तिरूप ऐसा अनेकान्त वस्तुस्वरूप है; परन्तु एक पदार्थ दूसरे पदार्थ में कुछ कर सकता है - इसप्रकार की मान्यता से पदार्थों की स्वतंत्रता नहीं रहती और एकान्त आ जाता है।

इसलिए उपादान-निमित्त के संवाद के द्वारा जो वस्तुस्वरूप समझाया गया है, उसे जानकर हे भव्य जीव ! तुम खेद का परित्याग करो। परद्रव्य की सहायता आवश्यक है - इस मान्यता का परित्याग करो। अपनी आत्मा को पराधीन मानना ही सबसे बड़ा खेद है। अब आत्मा के स्वाधीन स्वरूप को जानकर उस खेद का परित्याग करो; क्योंकि श्री जिनागम का प्रत्येक वचन वस्तुस्वरूप को स्वतंत्र घोषित करता है और जीव को सत्य पुरुषार्थ करने के लिए प्रेरित करता है।

यह बात विशेष ध्यान में रखना चाहिए कि निमित्त वस्तु है तो अवश्य। सच्चे देव, शास्त्र, गुरु को न पहचाने और कहे कि निमित्त का क्या काम है ? उपादान स्वतंत्र है। इसप्रकार उपादान को जाने बिना यदि स्वच्छन्द होकर प्रवृत्ति करे तो इससे उसका अज्ञान ही दृढ़ होगा। ऐसे जीव के धर्म तो हो ही नहीं सकता, उलटा शुभराग को छोड़कर अशुभराग में प्रवृत्ति करेगा। श्रीमद् राजचन्द्रजी ने आत्मसिद्धि में कहा है कि -

उपादानं नाम लड़, ये जे तजे निमित्त।

पामे नहीं परमार्थ ने, रहे भ्रान्ति मां स्थित ॥

उपादान का नाम ले, यदि यह तजे निमित्त।

पाये नहीं परमार्थ को, रहे भ्रान्ति में स्थित ॥

ध्यान रहे कि यहाँ उपादान का मात्र नाम लेकर जो निमित्त का निषेध करता है - ऐसे जीव की बात है, किन्तु जो उपादान के भाव को समझकर

पण्डित बनारसीदासजी कृत उपादान-निमित्त दोहा

गुरु उपदेश निमित्त बिन उपादान बलहीन।
ज्यों नर दूजे पांव बिन चलवे को आधीन ॥१॥
हों जाने था एक ही उपादान सों काज।
थकै सहाई पौन बिन पानी मांहि जहाज ॥२॥
ज्ञान नैन किरिया चरण दोऊ शिवमग धार।
उपादान निश्चय जहां तहां निमित्त व्यवहार ॥३॥
उपादान निजगुण जहां तहां निमित्त पर होय।
भेद ज्ञान परमाण विधि विरला बूझे कोय ॥४॥
उपादान बल जहं तहां नहीं निमित्त को दाव।
एक चक्र सों रथ चले रवि को यहै स्वभाव ॥५॥
सबै वस्तु असहाय जहां तहां निमित्त है कौन।
ज्यों जहाज परवाह में तिरै सहज बिन पौन ॥६॥
उपादान विधि निरवचन है निमित्त उपदेश।
वसे जु जैसे देश में धरे सु तैसे भेष ॥७॥

उपादान-निमित्त संबंधी सम्यग्ज्ञान के अभाव में या तो निमित्त को कर्त्ता मान लिया जाता है या फिर उसकी सत्ता से इन्कार किया जाने लगता है। निमित्तोपादान : एक अनुशीलन

निमित्त का लक्ष्य छोड़ देते हैं, वे सिद्धस्वरूप को प्राप्त होते हैं। इस गाथा को उलटकर कहा जाये तो -

उपादानो भाव लई, ये जे तजे निमित्त ।

पामे ते सिद्धत्वने रहे, स्वरूप मां स्थित ॥

उपादान का भाव ले, यदि यह तजे निमित्त ।

पाये वह सिद्धत्व को, रहे स्वरूप में स्थित ॥

अज्ञानी जीव सत् निमित्त को नहीं जानता और उपादान को भी नहीं जानता, वह जीव तो अज्ञानी ही रहता है; किन्तु जो जीव अपने उपादान स्वभाव के स्वतंत्र भावों को पहचानकर उस स्वभाव की एकाग्रता के द्वारा निमित्त के लक्ष्य को छोड़ देते हैं, वे जीव अपने स्वरूप में स्थित रहते हैं, उनकी भ्रान्ति का और राग का नाश हो जाता है और वे केवलज्ञान को प्राप्त कर मुक्त हो जाते हैं।

जो जीव उपादान-निमित्त के स्वरूप को नहीं जानता और मात्र उपादान की बातें करता है तथा सच्चे निमित्त को जानता ही नहीं, वह पापी है। यहाँ पर यह आशय नहीं है कि 'निमित्त से कोई कार्य होता है', किन्तु यहाँ अपने भाव को समझने की बात है। जब जीव के सत् निमित्त के समागम का भाव अन्तर से नहीं बैठा और स्त्री, पैसा इत्यादि के समागम का भाव जम गया, तब उसे धर्म के भाव का अनादर और संसार की ओर के विपरीत भाव का आदर हो जाता है। अपने में वर्तमान तीव्र राग है, तथापि वह उस राग का विवेक नहीं करता, (शुभाशुभ के बीच व्यवहार से भी भेद नहीं करता) वह जीव विपरीत भाव का ही सेवन करता है।

वह विपरीत भाव किसका ? क्या तू वीतरागी हो गया है ? यदि तुझे विकल्प और निमित्त का लक्ष्य ही न होता तो तुझे शुभ निमित्त के भी लक्ष्य

का प्रयोजन न होता, किन्तु जब विकल्प और निमित्त का लक्ष्य है, तब तो उसका अवश्य विवेक करना चाहिए। इससे यह नहीं समझ लेना चाहिए कि निमित्त से कोई हानि-लाभ होता है, परन्तु अपने भाव का उत्तरदायित्व स्वयं स्वीकार करना होगा। जो अपनी वर्तमान पर्याय के भाव को और उसके योग्य निमित्तों को नहीं पहचानता, वह त्रैकालिक स्वभाव को कैसे जानेगा ?

जीव या तो निमित्त से कार्य होता है यह मानकर पुरुषार्थहीन होता है अथवा निमित्त का और स्व पर्याय का विवेक भूल कर स्वच्छन्द हो जाता है। ये दोनों विपरीत भाव हैं। ये विपरीत भाव ही जीव को उपादान की स्वतंत्रता नहीं समझने देते। यदि जीव विपरीत भाव को दूर करके सत् को समझे तो उसे मोक्षमार्ग होता है। जब जीव अपने भाव से सत् को समझे, तब सत् निमित्त होते ही हैं; क्योंकि जिसे सत् स्वभाव के प्रति बहुमान है, उसे सत् निमित्तों की ओर का लक्ष्य और बहुमान हो ही जाता है। जिसे सच्चे देव-शास्त्र-गुरु के प्रति अनादर है, उसे मानो अपने सत् स्वरूप के प्रति अनादर है और सत् स्वरूप का अनादर ही निगोद भाव है, उस भाव का फल निगोददशा है।

इसलिए जिज्ञासुओं को सभी पहलुओं से उपादान-निमित्त को जैसे हैं उसप्रकार ठीक जानकर निश्चय करना चाहिए। यह निश्चय करने पर पराधीनता की मान्यता का खेद दूर हो जाता है और स्वाधीनता का सच्चा सुख प्रगट होता है।

ग्रन्थकर्ता का नाम और स्थान -

नगर आगरा अग्र है, जैनी जन को वास।

तिह थानक रचना करी, 'भैया' स्वमति प्रकाश ॥४६॥

अर्थ :- आगरा शहर अग्रगण्य नगरों में से है, जिसमें जैन लोगों का (अच्छी संख्या में) निवास है। वहाँ पर भैया भगवतीदास ने अपनी

बुद्धि के प्रकाशानुसार यह रचना की है अथवा अपने ज्ञान के प्रकाश के लिए यह रचना की है।

उपादान-निमित्त के बीच के बँटवारे के कथन का यह जो अधिकार कहा गया है, वह सर्वज्ञदेव की परम्परा से कथित तत्त्व का सार है और उसमें से अपनी बुद्धि के अनुसार जो मैं समझ सका हूँ, वही मैंने इस संवाद में प्रकट किया है।

रचनाकाल

संवत् विक्रम भूप को, सत्तरहसैं पंचास।

फाल्गुन पहले पक्ष में, दशों दिशा परकाश ॥४७॥

अर्थ :- विक्रम संवत् १७५० के फाल्गुन मास के प्रथम पक्ष में इस संवाद की रचना की गई।

जिसप्रकार पूर्णिमा के चन्द्रमा का प्रकाश दशों दिशाओं में फैल जाता है, उसीप्रकार यह उपादान-निमित्त सम्बन्धी तत्त्वचर्चा दशों दिशाओं में तत्त्व का प्रकाश करेगी - यत्र-तत्र इसी की चर्चा होगी। अर्थात् यह तत्त्वज्ञान सर्वत्र प्रकाशित होगा - इसप्रकार अन्तिम मंगल के साथ यह अधिकार पूर्ण होता है।

मूल में भूल

(दूसरा विभाग)

पण्डित बनारसीदासजी कृत

उपादान-निमित्त संवाद पर किये गये

परम पूज्य श्री कानजी स्वामी के प्रवचन

वस्तु का स्वभाव स्वतंत्र है। प्रत्येक वस्तु अपने स्वतंत्र स्वभाव से ही अपना कार्य कर रही है। उपादान और निमित्त दोनों स्वतंत्र भिन्न वस्तुएँ हैं। जब उपादान अपना कार्य करता है, तब निमित्त मात्र होता है। इतना ही उपादान-निमित्त का मेल है, उसकी जगह किंचित्मात्र भी कर्ता-कर्म संबंध मानना, सो अज्ञान है। पण्डित बनारसीदासजी ने अपने दोहों में संक्षेप में उपादान-निमित्त का स्वरूप बहुत ही सुन्दर रूप में बताया है।

शिष्य का प्रश्न

गुरु उपदेश निमित्त बिन, उपादान बलहीन।

ज्यों नर दूजे पाँव बिन, चलवे को आधीन ॥१॥

हों जाने था एक ही, उपादान सों काज।

थकै सहाई पौन बिन, पानी माहिं जहाज ॥२॥

अर्थ :- जैसे आदमी दूसरे पैर के बिना नहीं चल सकता, उसीप्रकार उपादान (आत्मा स्वयं) भी सद्गुरु के उपदेश के निमित्त बिना असमर्थ है। जो यह मानते हैं कि मात्र उपादान से ही काम हो जाता है, वे ठीक नहीं। (जैसे पानी में पवन की सहायता के बिना जहाज थक जाता है, उसीप्रकार निमित्त की सहायता के बिना उपादान अकेला कार्य नहीं कर सकता।) इसप्रकार अज्ञानियों की मान्यता है, जो कि ठीक नहीं है।

उपादान-निमित्त के स्वरूप की जिज्ञासावाला शिष्य यह बात पूछता है। निमित्त और उपादान की बात को कुछ ध्यान में रखकर वह पूछता है कि उपादान क्या है और निमित्त क्या है? किन्तु जिसे कुछ खबर ही न हो और जिसे जिज्ञासा ही न होती हो वह क्या पूछेगा?

जिसने निमित्त-उपादान की बात सुनी है, किन्तु अभी निर्णय नहीं

किया ऐसा निमित्त का पक्षवाला आदमी पूछता है कि बिना निमित्त के उपादान अपना कार्य करने में बलहीन है। यदि निमित्त हो तो उपादान काम कर सकता है, गुरु हो तो शिष्य को ज्ञान होता है, सूर्य हो तो कमल खिलता है, दो पैर हों तो आदमी चल सकता है; कहीं एक पैर से नहीं चला जाता। देखिये अकेला एक पैर काम नहीं कर सकता। जब एक पैर को दूसरे पैर की सहायता मिलती है, तब चलने का लाभ होता है, इसीप्रकार अकेला उपादान काम नहीं कर सकता, किन्तु जब उपादान और निमित्त दोनों एकत्रित होते हैं, तब कार्य होता है। उपादान का अर्थ है - आत्मा की शक्ति। जीव का सम्यग्दर्शन प्रकट करने में आत्मा की सच्ची समझ-स्वभाव की प्रतीति का होना, सो उपादान है और गुरु का उपदेश निमित्त है। जब उपादान स्वयं कार्यरूप परिणमन करता है, तब जो बाह्य संयोग होता है, वह निमित्त है। इसप्रकार उपादान-निमित्त की व्यवस्था है।

अज्ञानियों का यह तर्क है कि यदि अनुकूल निमित्त नहीं मिलता तो उपादान का काम नहीं बनता और वे तत्संबंधी दृष्टान्त भी देते हैं। ये दोहे पं. बनारसीदास द्वारा रचे गये हैं। उन अज्ञानियों की ओर से स्वयं प्रश्न उपस्थित करके उनका उत्तर दिया है। ज्ञानीजन जानते हैं कि अज्ञानियों के क्या-क्या तर्क हो सकते हैं। ये दोहे अत्यन्त उच्च कोटि के हैं। इनमें वस्तुस्वभाव का बल बताया गया है।

अज्ञानी यह मानता है कि कोई निमित्त हो तो उपादान का काम होता है और ज्ञानी यह जानता है कि मात्र वस्तु के स्वभाव से ही कार्य होता है, उसमें निमित्त की न तो कोई सहायता होती है और न कोई असर होता है, किन्तु उससमय जो बाह्य संयोग उपस्थित होते हैं, उन्हीं को निमित्त कह दिया जाता है; कार्य तो अकेला उपादान स्वयं करता है।

शिष्य का प्रश्न - आप कहते हैं कि मात्र उपादान से ही काम होता

है, यदि यह सच हो तो बिना हवा जहाज क्यों नहीं चलता ? उपादान के होते हुए भी हवा के निमित्त के बिना क्या जहाज चल सकता है ? बिना हवा के अच्छे से अच्छा जहाज भी रुककर रह जाता है, इसीप्रकार सद्गुरु के उपदेश के बिना आत्मारूपी जहाज मोक्षमार्ग की ओर नहीं चल सकता। सद्गुरु का निमित्त हो तो आत्मारूपी जहाज सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूपी मुक्ति के मार्ग पर चल सकता है। इससे सिद्ध हुआ कि निमित्त हो तो उपादान काम करता है और निमित्त न हो तो उपादान बलहीन हो जाता है। अकेला आत्मा क्या कर सकता है ? यदि सद्गुरु हों तो मार्ग बतायें और आत्मा उस मार्ग पर चले। इसप्रकार निमित्त-उपादान एकत्रित हों तो आत्मा मोक्षमार्ग में चलता है।

निमित्त के उपर्युक्त तर्क का उपादान की ओर से उत्तर देते हुए कहा है कि -

ज्ञान नैन किरिया चरण, दोऊ शिवमग धार।

उपादान निश्चय जहाँ, तहाँ निमित्त व्यवहार ॥३॥

अर्थ :- सम्यग्दर्शनपूर्वक ज्ञानरूपी दो आँखें और वह ज्ञान में स्थिरता स्वरूप सम्यक् चारित्र की क्रियारूपी जो चरण वह दोनों मोक्षमार्ग को धारण करते हैं। जहाँ ऐसा निश्चय उपादान (मोक्षमार्ग) होता है, वहाँ निमित्तरूप व्यवहार होता ही है।

सम्यग्दर्शनपूर्वक ज्ञान और ज्ञान में स्थिरतारूप सम्यक्चारित्र की क्रिया - ये दोनों मोक्षमार्ग को धारण करते हैं। जहाँ उपादानरूप निश्चय होता है, वहाँ निमित्तरूप व्यवहार होता ही है। अज्ञानी मानते हैं कि सद्गुरु का निमित्त और आत्मा का उपादान मिलकर मोक्षमार्ग है, किन्तु ज्ञानी जानते हैं कि 'ज्ञान नयन किरिया चरण' अर्थात् ज्ञानरूपी नेत्र मोक्षमार्ग को दिखाते हैं और चारित्र उसमें स्थिर होता है। इसप्रकार ज्ञान और चारित्र - दोनों मिलकर मोक्षमार्ग है (ज्ञान के कहने पर उसमें श्रद्धा भी आ जाती

है)। जहाँ ऐसा निश्चय मोक्षमार्ग होता है, वहाँ सद्गुरु का निमित्तरूप व्यवहार होता ही है, किन्तु ज्ञान-चारित्ररूप मोक्षमार्ग तो अकेले उपादान से ही होता है।

आत्मा देहादि पर संयोगों से भिन्न है, दया इत्यादि की शुभ भावना और हिंसा इत्यादि की अशुभ भावना - दोनों विकार हैं, आत्मा के स्वरूप नहीं हैं। इसप्रकार पर से और विकार से भिन्न आत्मा के शुद्ध स्वरूप की श्रद्धापूर्वक ज्ञान आत्मा की आँख है और पुण्य-पाप के विकार से रहित स्थिरता रूप क्रिया चारित्र है; इसप्रकार ज्ञान और चारित्र दोनों मोक्ष के उपाय हैं। पहले ज्ञानरूपी आँखों से मोक्ष के मार्ग को जाने बिना वह मोक्षमार्ग में कैसे चलेगा ? आत्मा के स्वभाव को जाने बिना पुण्य में मोक्षमार्ग मानकर अज्ञानभाव से संसार में ही चक्कर लगायेगा। पहले शुद्धात्मा के ज्ञानपूर्वक मोक्षमार्ग को जाने और फिर उसमें स्थिर हो तो मोक्ष प्राप्त होता है। जीव अपने उपादान से जब ऐसे मोक्षमार्ग को प्रकट करता है, तब सद्गुरु निमित्तरूप होते हैं - यह व्यवहार है।

उपादान अर्थात् निश्चय और निमित्त अर्थात् व्यवहार। उपादान तो स्व है और निमित्त पर है अर्थात् स्व निश्चय है और पर व्यवहार है। जो द्रव्य स्वयं कार्यरूप होता है, वह द्रव्य कार्य में निश्चय है और जब स्वयं कार्यरूप हो रहा हो, तब अनुकूल पर वस्तु के ऊपर 'निमित्त' का आरोप करना, सो व्यवहार है। इसप्रकार निमित्त केवल उपचारमात्र है। इस सम्बन्ध में श्री पूज्यपाद स्वामी ने इष्टोपदेश में कहा है कि -

नाज्ञो विज्ञत्वमायाति विज्ञो नाज्ञत्वमृच्छति ।

निमित्तमात्रमन्यस्तु गतेर्धर्मास्तिकायवत् ॥३५॥

अर्थ :- अज्ञानी जीव (पर से) ज्ञानी नहीं हो सकता, इसीप्रकार ज्ञानी जीव (पर के द्वारा) अज्ञानी नहीं हो सकता, दूसरे तो निमित्तमात्र होते हैं। जैसे अपनी शक्ति से चलते हुए जीव और पुद्गलों के लिए

धर्मास्तिकाय निमित्त है, उसीप्रकार मनुष्य स्वयं ज्ञानी अथवा अज्ञानी होता है, उसमें गुरु इत्यादि निमित्तमात्र हैं।

‘धर्मास्तिकायवत्’ अर्थात् सभी निमित्त धर्मास्तिकाय के समान हैं। इस एक वाक्य में ही निमित्त की उपादान में सर्वथा अकिंचित्करता बता दी गई है।

जैसे धर्मास्तिकाय सदा सर्वत्र विद्यमान है, किन्तु जो पदार्थ स्वयं गतिरूप परिणमन करते हैं, उनके लिए धर्मास्तिकाय पर निमित्त का आरोप आता है और जो पदार्थ-स्थितिरूप होते हैं, उनके लिए धर्मास्तिकाय पर निमित्त का आरोप नहीं होता। इसप्रकार यदि पदार्थ गतिरूप परिणमन करे तो धर्मास्तिकाय को निमित्त कहा जा सकता है और यदि गति न करे तो निमित्त नहीं कहा जाता। धर्मास्तिकाय तो दोनों में मौजूद है, वह कहीं पदार्थों को चलाता नहीं है; किन्तु यदि पदार्थ गति करता है तो मात्र आरोप से उसे निमित्त कहा जाता है। इसीप्रकार समस्त निमित्तों को धर्मास्तिकाय की तरह ही समझना चाहिए।

कमल खिलता है, उसमें सूर्य निमित्त है अर्थात् यदि कमल स्वयं खिले तो सूर्य पर निमित्तारोप आता है और यदि कमल न खिले तो सूर्य पर निमित्तारोप नहीं आता। कमल के कार्य में सूर्य ने कुछ भी नहीं किया, वह तो धर्मास्तिकाय की तरह मात्र उपस्थित होता है।

यथार्थ ज्ञान में गुरु का निमित्त है अर्थात् यदि जीव स्वयं यथार्थ वस्तु को समझ ले तो गुरु पर निमित्त का आरोप आता है और यदि जीव स्वयं यथार्थ को नहीं समझता तो गुरु को निमित्त नहीं कहा जाता। गुरु किसी के ज्ञान में कुछ करता नहीं है, वह तो मात्र धर्मास्तिकाय की तरह उपस्थित रहता है।

मिट्टी से घड़ा बनता है, उसमें कुम्हार निमित्त है अर्थात् मिट्टी स्वयं घड़े के रूप में परिणमित हो तो कुम्हार पर निमित्त का आरोप होता है

और यदि मिट्टी घड़े के रूप में परिणमित नहीं होती तो कुम्हार निमित्त नहीं कहलाता। मिट्टी के कार्य में कुम्हार कुछ नहीं करता, कुम्हार तो धर्मास्तिकाय की तरह उपस्थित मात्र है। इसप्रकार जहाँ-जहाँ परवस्तु को निमित्त कारण कहा जाता है, वहाँ 'धर्मास्तिकायवत्' समझना चाहिए।

पदार्थ का स्वयं कार्यरूप में परिणमन होना, सो निश्चय है और अन्य पदार्थ में कारणपने का आरोप करके उसे निमित्त कहना, सो व्यवहार है। जहाँ निश्चय होता है, वहाँ व्यवहार होता ही है अर्थात् जहाँ उपादान स्वयं कार्यरूप में परिणमित होता है, वहाँ निमित्तरूप परवस्तु की उपस्थिति अवश्य होती है। उपादान ने अपनी शक्ति से कार्य किया है - ऐसा ज्ञान करना, सो निश्चयनय है और उससमय उपस्थित रहनेवाली परवस्तु का ज्ञान करना सो व्यवहारनय है।

अर्थ :- सम्यग्दर्शन-ज्ञानरूप नेत्र और ज्ञान में चरण अर्थात् लीनतारूप क्रिया - दोनों मिलकर मोक्षमार्ग जानो। उपादानरूप निश्चय कारण जहाँ हो, वहाँ निमित्तरूप व्यवहार कारण होता ही है। निमित्त की राह देखकर रुकना पड़े - ऐसी पराधीनता नहीं है।

१. उपादान यह निश्चय अर्थात् सच्चा कारण है, निमित्त तो मात्र व्यवहार अर्थात् उपचार कारण कहा है, सच्चा कारण नहीं है; इसलिए तो उसे अकारणवत् कहा है और उसे उपचार (आरोप) कारण क्यों कहा कि वह उपादान का कुछ कार्य करते कराते नहीं, तो भी कार्य के समय उनकी उपस्थिति के कारण उसे उपचारमात्र कारण कहा है।

२. सम्यग्ज्ञान और ज्ञान में लीनता को मोक्षमार्ग जानो - ऐसा कहा; उसी में शरीराश्रित उपदेश उपवासादिक क्रिया और शुभरागरूप व्यवहार को मोक्षमार्ग न जानो - यह बात आ जाती है।

प्रथम प्रश्न का समाधान -

उपादान निजगुण जहाँ, तहाँ निमित्त पर होय।

भेद ज्ञान परमाण विधि, बिरला बूझे कोय ॥४॥

अर्थ :- जहाँ निजशक्तिरूप उपादान तैयार हो, वहाँ पर निमित्त होते ही हैं - ऐसी भेदज्ञान प्रमाण की विधि (व्यवस्था) है। यह सिद्धान्त कोई बिरला ही समझता है।

जहाँ उपादान की योग्यता हो, वहाँ नियम से निमित्त होता है, निमित्त की राह देखना पड़े - ऐसा नहीं है और निमित्त को हम जुटा सकते हों ऐसा भी नहीं है। निमित्त की राह देखनी पड़ती है या उसे मैं ला सकता हूँ - ऐसी मान्यता परपदार्थ में अभेदबुद्धि अर्थात् अज्ञान सूचक है। निमित्त और उपादान दोनों असहायरूप हैं तो मर्यादा है।

उपादान अपनी शक्ति से कार्य करता है, तब वहाँ निमित्त होता है; किन्तु वह उपादान में कुछ भी कर नहीं सकता - यह भेद-विज्ञान की बात है। स्व और परद्रव्य भिन्न-भिन्न हैं, एक का दूसरे में नास्तित्व है, तब फिर वह क्या कर सकता है? यदि खरगोश के सींग किसी पर असर कर सकते हों तो निमित्त का असर भी दूसरे पर हो सकता है, किन्तु जैसे खरगोश के सींग का अभाव होने से उसका किसी पर असर मानना झूठ है, उसीप्रकार निमित्त का पर द्रव्य में अभाव होने से निमित्त का कोई असर पर द्रव्य में मानना मिथ्यात्व है। इसप्रकार वस्तुस्वभाव का भेदज्ञान किसी बिरले सत्य पुरुषार्थी जीव के ही होता है। उपादान-निमित्त की स्वतंत्रता को ज्ञानी ही जानते हैं। ज्ञानीजन वस्तुस्वभाव को देखते हैं, इसलिए वे जानते हैं कि प्रत्येक वस्तु की पर्याय उस वस्तु के अपने स्वभाव से होती है। वस्तुस्वभाव में ही अपना कार्य करने की शक्ति है, उसे परवस्तु के निमित्त की आवश्यकता नहीं होती। अज्ञानी वस्तुस्वभाव को नहीं जानते; इसलिए वे संयोग को देखते हैं और वस्तु का कार्य स्वतंत्र नहीं मानकर उसे संयोगाधीन-निमित्ताधीन मानते हैं। इसलिए उनके

संयोग की एकत्वबुद्धि दूर नहीं होती और स्व-पर भेदज्ञान नहीं होता।

यहाँ पर उपादान और निमित्त की स्वतंत्रता बतलाकर भेदज्ञान का उपाय बताते हैं। समस्त जगत के बहुत से जीव उपादान-निमित्त के स्वरूप को समझे बिना उसकी खिचड़ी पकाया करते हैं। निमित्त में कोई विशेषता है। कभी-कभी निमित्त का असर होता है, कभी-कभी निमित्त की मुख्यता से कार्य है - इसप्रकार की तमाम मान्यतायें अज्ञानमूलक हैं।

उपादान बल जहाँ तहाँ, नहिं निमित्त को दाव।

एक चक्र सौं रथ चलै, रवि को यहै स्वभाव ॥५॥

अर्थ :- जहाँ देखो वहाँ सदा उपादान का ही बल है, निमित्त होते हैं; परन्तु निमित्त का कुछ भी (बल) नहीं है। जैसे एक चक्र से सूर्य का रथ चलता है। इसप्रकार प्रत्येक कार्य उपादान की योग्यता (सामर्थ्य) से ही होता है, निमित्त-उपादान में कुछ भी कर्ता नहीं है।

जहाँ प्रत्येक वस्तु अपने-अपने स्वभाव से ही कार्य करती है, वहाँ उसके स्वभाव में परवस्तु क्या कर सकती है? कोई वस्तु अन्य वस्तु के भाव में परिणमन नहीं करती। उपादान स्वयं अपने भाव में परिणमन करता है और निमित्त निमित्त के अपने भाव में परिणमन करता है। अपनी पर्याय का कार्य करने में प्रत्येक वस्तु का उपादान स्वयं ही बलवान है, उसमें निमित्त का कोई कार्य नहीं। इसमें दृष्टान्त भी प्राकृतिक वस्तु का दिया गया। सूर्य के रथ को एक ही चक्र होता है, एक चक्र से ही चलने का सूर्य का स्वभाव है; उसीप्रकार एक स्ववस्तु से ही कार्य करने का वस्तु का स्वभाव है। अपने उपयोग को स्वभाव की ओर बदलने में जीव स्वयं स्वतंत्र है। इसलिए हे निमित्त के पक्षकार ! तुम कहते हो कि निमित्त हो तो कार्य हो और जैसा निमित्त मिलता है, उसी के अनुसार उपादान की पर्याय होती है - यह बात असत्य है। स्वभाव में पर निमित्त का कोई कार्य है ही नहीं। यदि वस्तु की कोई भी पर्याय निमित्त के कारण होती हो

तो क्या उस वस्तु में उस पर्याय के होने की शक्ति नहीं थी। अनादि-अनन्त काल की समस्त पर्यायों का सामर्थ्य वस्तु में विद्यमान है और जबकि वस्तु में ही अनादि-अनन्त पर्यायों की शक्ति है, तब उसमें दूसरे ने क्या कर दिया। अनादि-अनन्त पर्यायों में से यदि एक भी पर्याय पर के कारण अथवा पर की मुख्यता से लेकर होती है - यह माना जाये तो कहना होगा कि ऐसा माननेवाले ने वस्तु को ही स्वीकार नहीं किया।

भला निमित्त ने किया कैसे ? क्या वस्तु में वह पर्याय नहीं थी और निमित्त ने बाहर से लाकर उसे दे दिया। जिस वस्तु में जो शक्ति न हो, वह दूसरे से नहीं दी जा सकती और जो शक्ति वस्तु में होती है, उसे दूसरे की सहायता की आवश्यकता नहीं होती। ऐसे स्वतंत्र वस्तुस्वभाव को स्वीकार किए बिना स्वतंत्र दशा (सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र) कदापि प्रकट नहीं होगी।

पहले एक तर्क में कहा था कि क्या आदमी दो पैर के बिना चल सकता है ? हाँ, जिसमें चलने की उसप्रकार की शक्ति होती है, वह एक पैर से भी चल सकता है। ९६ अन्तर्द्वीप के मनुष्य के एक पैर होता है और वे एक ही पैर से चलते हैं। इसीप्रकार आत्मा के अन्तर स्वभाव की शक्ति से निर्मलदशा प्रकट होती है। निर्मलदशा के प्रकट करने में निमित्त का कोई कार्य नहीं है, इतना ही नहीं, किन्तु निमित्त के प्रति लक्ष्य भी नहीं होता। निमित्त के लक्ष्य को छोड़कर मात्र स्वभाव के लक्ष्य से निर्मलदशा प्रकट होती है।

जड़ के सुख-दुःख नहीं होता। यहाँ तो जीव का प्रयोजन है। जीव में 'उपयोग' है, उसी से वह अकेला अपने उपयोग को स्व की ओर बदल सकता है। निमित्त की ओर से उपयोग को हटाकर स्वभाव की ओर उपयोग को करने के लिए उपयोग स्वयं अपने से ही बदल सकता है। स्वद्रव्य और अनेकप्रकार के परद्रव्य एकसाथ उपस्थित हैं, उनमें अपने उपयोग को स्वयं जिस ओर से ले जाना चाहे, उस ओर ले जा सकता है। परद्रव्यों के होने पर भी उन सबका लक्ष्य छोड़कर उपयोग को स्वद्रव्य की

ओर ला सकता है, इस न्याय में उपयोग की स्वतंत्रता बताई है और निमित्ताधीन दृष्टि को उड़ा दिया है।

वस्तु का स्वभाव ही ऐसा है कि एक-दूसरे का कुछ नहीं कर सकता - इसी को आगे कहते हैं -

दूसरे प्रश्न का समाधान -

सधै वस्तु असहाय जहाँ, तहाँ निमित्त है कौन ?

ज्यों जहाज परवाह में, तिरै सहज बिन पौन ॥६॥

अर्थ :- प्रत्येक वस्तु स्वतंत्रता से अपनी अवस्था को (कार्य को) प्राप्त करती है, वहाँ निमित्त कौन ? जैसे जहाज प्रवाह में सहज ही पवन बिना ही तैरता है।

जीव और पुद्गल द्रव्य शुद्ध या अशुद्ध अवस्था में स्वतंत्रपने से निमित्ताधीन परिणमन करते हैं। अज्ञानी जीव भी स्वतंत्रपने से निमित्ताधीन परिणमन करते हैं, कोई निमित्त उसे आधीन नहीं बना सकता।

इस दोहे में वस्तुस्वभाव को विशेष स्पष्टता से बताया है। 'सधै वस्तु

मुक्ति के मार्ग में जिन महत्त्वपूर्ण विषयों का सम्यक् परिज्ञान अत्यन्त आवश्यक है, उनमें से 'उपादान-निमित्त' भी एक ऐसा महत्त्वपूर्ण विषय है, जिसके सम्यक् ज्ञान बिना परावलम्बन की दृष्टि एवं वृत्ति समाप्त नहीं होती, स्वावलम्बन का भाव जागृत नहीं होता, मुक्ति के मार्ग का सम्यक् पुरुषार्थ भी स्फुरायमान नहीं होता है।

निमित्तोपादान : एक अनुशीलन

पृष्ठ - १



असहाय' अर्थात् सभी वस्तुएँ स्वतंत्र हैं, एक वस्तु की दूसरी में नास्ति है, तब फिर उसमें निमित्त कौन हो सकता है ? एक वस्तु में दूसरी वस्तु को निमित्त कहना व्यवहार है-उपचार है। वस्तुस्वभाव पर से भिन्न शक्ति नहीं है, वह स्वभाव पर की अपेक्षा नहीं रखता और उस स्वभाव का साधन भी असहाय है। निमित्त निमित्त में भले रहे, परन्तु उपादान के कार्य में निमित्त कौन है ? वस्तु के अनंतगुणों में भी एक गुण दूसरे गुण से असहाय-स्वतंत्र है, तब फिर एक वस्तु का दूसरी भिन्न वस्तु के साथ तो कोई सम्बन्ध नहीं है। यहाँ स्वभाव दृष्टि के बल से कहते हैं कि एक वस्तु में दूसरी वस्तु का निमित्त भी कैसा ? निमित्त होता है, उसका ज्ञान गौणरूप में है।

जैसे वायु की मौजूदगी के बिना जहाज पानी के प्रवाह में चलता है उसीप्रकार आत्मा पर निमित्त के लक्ष्य के बिना और पुण्य-पाप विकार से रहित उपादान के लक्ष्य से स्वभाव में स्थिर हो गया है, उसमें निमित्त कौन है? बाह्य में निमित्त है या नहीं - इसका लक्ष्य नहीं है और अन्तर में शुक्लध्यान की श्रेणी में चढ़कर केवलज्ञान प्राप्त करता है। एक क्षण में अनन्त पुरुषार्थ प्रकट करके केवलज्ञान प्रकट करता है - ऐसा असहाय वस्तुस्वभाव है। ऐसे आत्मस्वभाव की प्रतीति करके उसकी रमणता में स्थिर हो जाने पर बाह्य निमित्त का लक्ष्य नहीं रहता। विकार किसी निमित्त की प्रेरणा से नहीं होता। उपादान स्वयं अपनी पर्याय की योग्यता से विकार करता है तो होता है। सारी वस्तु असहाय है और प्रत्येक पर्याय भी असहाय है।

अहो ! जिसने ऐसा स्वतंत्र वस्तुस्वभाव प्रतीति में लिया है, वह अपनी निर्मलता के लिए किसका मुँह देखेगा ? ऐसी प्रतीति होने पर वह परमुखापेक्षी नहीं रहता अर्थात् मात्र स्वभाव की दृष्टि और एकाग्रता के



बल से विकार का क्षय होकर अल्पकाल में केवलज्ञान प्रकट होता है।

कोई पूछता है कि यदि निमित्त कुछ भी नहीं करता और निमित्त आरोप मात्र है तो फिर शास्त्रों में जो बारम्बार निमित्त से उपदेश पाया जाता है, उसका क्या कारण है ? उसका समाधान करते हुए इस अन्तिम दोहे में कहते हैं कि -

उपादान विधि निरवचन, है निमित्त उपदेश।

वसे जु जैसे देश में, धरे सु तैसे भेष ॥७॥

अर्थ :- उपादान का कथन एक “योग्यता” शब्द द्वारा ही होता है; उपादान अपनी योग्यता से अनेक प्रकार परिणमन करता है, तब उपस्थित निमित्त पर भिन्न-भिन्न कारणपने का आरोप (भेष) आता है, इससे निमित्त द्वारा यह कार्य हुआ - ऐसा व्यवहार से कहा जाता है।

उपादान जब जैसे कार्य को करता है, तब वैसे कारणपने का आरोप (भेष) निमित्त पर आता है। जैसे - कोई वज्र कायवान मनुष्य नरकगति योग्य मलिन भाव करता है तो वज्रकाय पर नरक का कारणपने का आरोप आता है और यदि जीव मोक्षयोग्य निर्मलभाव करता है तो उसी निमित्त पर मोक्षकारणपने का आरोप आता है। इसप्रकार उपादान के कार्यानुसार निमित्त में कारणपने का भिन्न-भिन्न आरोप दिया जाता है। इससे ऐसा सिद्ध होता है कि निमित्त से कार्य नहीं होता, परन्तु कथन होता है। अतः उपादान सच्चा कारण है और निमित्त आरोपित कारण है।

प्रत्येक समय का उपादान स्वतंत्र होने से वाणी के द्वारा नहीं कहा जा सकता। कथन में भेद आये बिना नहीं रहता। कथन में तो निमित्त का ज्ञान कराने के लिए निमित्त के द्वारा कथन करके समझाया जाता है, परन्तु जो निमित्त के ही कथन के पीछे लगे रहते हैं और वास्तविक आशय को नहीं पकड़ते, उनका लक्ष्य निमित्त पर ही बना रहता है। निमित्त के कथन



का अर्थ शब्दानुसार नहीं होता, किन्तु उपादान के भाव को ही मुख्य समझकर उसका यथार्थ अर्थ समझना चाहिए।

शास्त्रों में कर्मों का जो वर्णन है, वह भी निमित्त मात्र दिखाने के लिए व्यवहार से है अर्थात् आत्मा के अनेक प्रकार के भावों को पहचानने के लिए कर्मों के निमित्त से कथन किया है। वहाँ आत्मा के भावों को पहचानने का ही प्रयोजन है, किन्तु उसकी जगह अज्ञानी का लक्ष्य कर्मों पर ही रहता है। निमित्त की मुख्यता से कथन होता है, निमित्त की मुख्यता से कार्य कभी नहीं होता; जैसा काम किया, उसप्रकार में निमित्त परवस्तु का ज्ञान कराने के लिए उसे निमित्त कहा है, पश्चात् छोटे दोहे में पं. बनारसीदासजी ने भार देकर कहा है कि अरे ! असहाय वस्तुस्वभाव में निमित्त है कौन ?

जैसे एक आदमी अनेक देशों में घूमता है और अनेकप्रकार के वेश धारण करता है, किन्तु अनेक प्रकार के वेश धारण करने से कहीं वह आदमी बदल नहीं जाता, आदमी तो वह का वही रहता है। इसीप्रकार आत्मा को पहचानने के लिए अनेक प्रकार के निमित्त से कथन किया गया है, किन्तु आत्मा तो एक ही प्रकार का है। मात्र ‘आत्मा आत्मा’ कहने से आत्मा को नहीं पहचाना जाता, इसलिए उपदेश में भेद से और निमित्त से उसका ज्ञान कराया जाता है। उसका प्रयोजन मात्र आत्मा के भाव को बताना है, इसलिए निमित्त का और निमित्त की अपेक्षा से होनेवाले भेदों का लक्ष्य छोड़कर मात्र अभेद उपादान को लक्ष्य में लेना ही सम्यग्दर्शन और मोक्ष का उपाय है। इसलिए उपादान-निमित्त के स्वाधीन स्वरूप को पहचानकर उपादानस्वभाव की ओर ढलना चाहिए।

‘उपादान विधि निरवचन, है निमित्त उपदेश’ में - यह बात है कि जिससे द्रव्य उत्पाद-व्यय-ध्रौव्ययुक्त सत् होने से, उपादान के कार्य करने की विधि स्वतः योग्यता - एक ही प्रकार (निरवचन) है। प्रत्येक द्रव्य में प्रत्येक समय की स्वतंत्र योग्यता से ही अपनी योग्यतानुसार कार्य होता है,

हमारे यहाँ प्राप्त महत्त्वपूर्ण प्रकाशन

मोक्षशास्त्र/चौबीस तीर्थकर महापुराण
 बृहद जिनवाणी संग्रह
 रत्नकरण्डश्रावकाचार/समयसार
 मोक्षमार्ग प्रवचन भाग १, २, ३
 प्रवचनसार/क्षत्रचूड़ामणि
 सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका भाग २ (उत्तरार्ध)
 समयसार नाटक/मोक्षमार्गप्रकाशक
 सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका भाग २ (पूर्वार्ध)
 एवं भाग ३
 बृहद द्रव्यसंग्रह/जिनेन्द्र अर्चना
 दिव्यध्वनिसार प्रवचन/नियमसार
 योगसार प्रवचन/तीनलोकमंडल विधान
 समयसार कलश/चिन्तन की गहराईयाँ
 प्रवचनरत्नाकर भाग १ से ११ तक
 नयप्रज्ञापन/समाधितंत्र प्रवचन
 पं. टोडरमल व्यक्तित्व और कर्तव्य
 समयसार अनुशीलन सम्पूर्ण
 भाग १, २, ३, ४, ५
 आचार्य अमृतचन्द्र : व्यक्तित्व और कर्तव्य
 पंचास्तिकाय संग्रह/सिद्धचक्र विधान
 ज्ञानस्वभाव ज्ञेयस्वभाव

भावदीपिका/कार्तिकेयानुप्रेक्षा
 परमभावप्रकाशक नयचक्र
 पुरुषार्थसिद्ध्युपाय/ज्ञानगोष्ठी
 सुक्तिसुधा
 आत्मा ही है शरण/आत्मानुशासन
 संस्कार/इन भावों का फल क्या होगा
 इन्द्रध्वज विधान/ध्वलासार
 रामकहानी/गुणस्थान विवेचन
 सुखी जीवन/विचित्र महोत्सव
 सर्वोदय तीर्थ
 सत्य की खोज/बिखरे मोती
 निर्विकल्प आत्मानुभूति के पूर्व
 तीर्थकर भगवान महावीर
 और उनका सर्वोदय तीर्थ
 श्रावकाधर्मप्रकाश/कल्पद्रुम विधान
 वी.वि. पाठमाला भाग १, २, ३
 वी.वि. प्रवचन भाग १ से ६ तक
 तत्त्वज्ञान तरंगणी/रत्नत्रय विधान
 भक्तामर प्रवचन/बारह भावना :
 एक अनुशीलन
 धर्म के दशलक्षण/विदाई की बेला
 नवलब्धि विधान/बीस तीर्थकर विधान

पंचमेरु नंदीश्वर विधान/ रत्नत्रय विधान
 सुखी होने का उपाय भाग १ से ८
 जैनतत्त्व परिचय/करणानुयोग परिचय
 आ. कुन्दकुन्द और उनके टीकाकार
 कालजयी बनारसीदास
 बालबोध भाग १, २, ३
 तत्त्वज्ञान पाठमाला भाग १, २
 छहढाला (सचित्र)/भ. ऋषभदेव
 शीलवान सुदर्शन
 प्रशिक्षण निर्देशिका/जैनविधि-विधान
 क्रमबद्धपर्याय/दृष्टि का विषय
 बारसाणुवेखा/चौबीस तीर्थकर पूजा
 गागर में सागर/आप कुछ भी कहो
 पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव
 जैनधर्म की कहानियाँ भाग १ से १५ तक
 अहिंसा के पथ पर/जिनवरस्य नयचक्रम्
 णमोकार महामंत्र/वीतराग-विज्ञान
 प्रवचन भाग-५
 चौसठ ऋद्धि विधान/कारणशुद्धपर्याय
 दशलक्षण विधान/आचार्य कुन्दकुन्ददेव
 पंचपरमेष्ठी विधान/विचार के पत्र
 विकार के नाम/मी स्वतः भगवान आहे
 आचार्य कुन्दकुन्द और उनके पंच परमागम
 परीक्षामुख/मुक्ति का मार्ग

युगपुरुष कानजीस्वामी/
 सामान्य श्रावकाचार
 अलिंगग्रहण प्रवचन/जिनधर्म प्रवेशिका
 मैं कौन हूँ/सत्तास्वरूप/
 वीर हिमाचलतैं निकसी
 समयसार : मनीषियों की दृष्टि में
 व्रती श्रावक की ग्यारह प्रतिमाएँ/
 पदार्थ-विज्ञान
 मैं ज्ञानानन्दस्वभावी हूँ
 महावीर वंदना (कलैण्डर)
 वस्तुस्वातंत्र्य/भरत-बाहुबली नाटक
 शास्त्रों के अर्थ समझने की पद्धति
 सुख कहाँ है/सिद्धस्वभावी ध्रुव की ऊर्ध्वता
 मैं स्वयं भगवान हूँ/
 णमोकार एक अनुशीलन
 रीति-नीति/जिनेंद्र पूजेचे स्वरूप
 गोली का जवाब गोली से भी नहीं
 समयसार कलश पद्यानुवाद/
 मूल में भूलट/जिनेंद्र अष्टक
 योगसार पद्यानुवाद/अष्टपाहुड़ पद्यानुवाद
 योगसार पद्यानुवाद/
 कुन्दकुन्दशतक पद्यानुवाद
 अर्चना/शुद्धात्मशतक पद्यानुवाद
 षट्कारक अनुशीलन/अपनत्व का विषय

अनिर्णीत
सुलट्टयो
पलट्टयो
रहें
सुलट्टयो
जाहिं
नहिं
कह्यो
वे
सबै
जाहिं
मेंवड्यो
बडो
भूल हैं
दें
उक्ति
खिला
तहाँ
से
)
उससे
बड़ाई
से
सम्यक्वान
बड़ाई
बड़ाई

की
से
आत्मा स्वयं
आत्मा की वह सम्यक् प्रतीति है
रहें
निमित्त प्रकारान्तर
जाहिं
स्वभाववाला
कह्यो
पुण्यभाव
मनुष्य
फंसा
अवस्था में होती है
चन्द्रमा एक ही
विन ना
उससे
)
जोड़ान
बड़यो
पर लक्ष्मी
संसार का ही
कहते
है
हैं
दुःख
इसके

नाहिं
अविनाशी
को
स्व
अनन्त संसार में
आस्रव
खौलते
आकुलित होकर दुःख
फिर्यो
तू स्वयं में
में कोई समर्थ
बाद
के
का
हार्यो
जीव ने
अन्त नवरन्यो
स्थिरता करना
होगा
सब
झोके
को
दुर्लक्ष्य
हों
बूझे
हों

)
आत्मारूपी
कहा जा
पर
वहाँ
दूसरे
के
, है